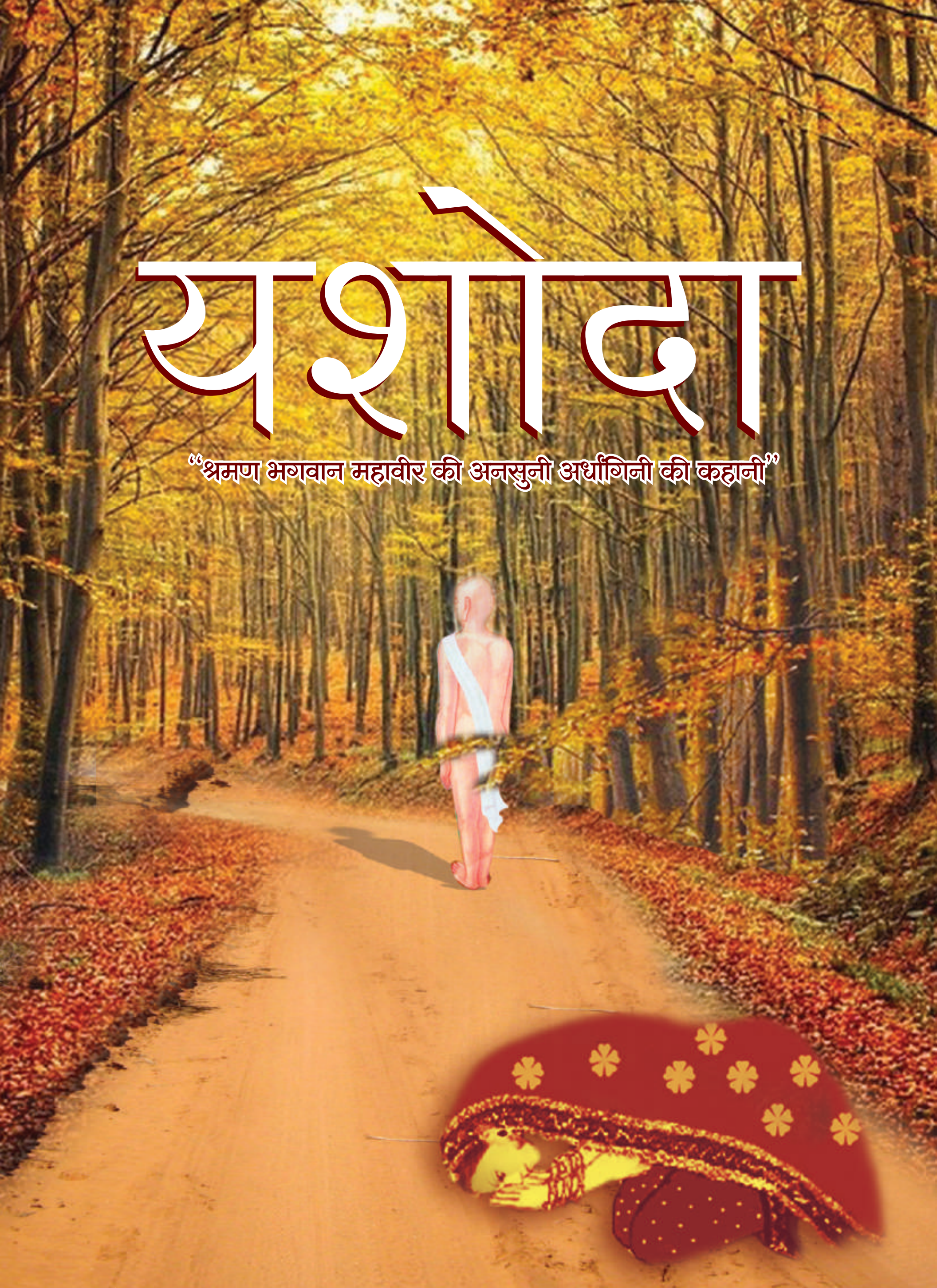

यशोदा

"श्रमण भगवान महावीर की अनसुनी अर्धांगिनी की कहानी"

युगप्रधान आचार्यसम पू.पं.श्री चंद्रशेखरविजयजी म.सा.

समर्पणम्

वर्तमानकाल के सभी संयमीओको...

वर्धमान कुमार की पत्नी यशोदा देवी को,

जिन्होने खुदकी इच्छाओको दफनाकर स्वामी को रोते हुए नेत्रो से, रोते हुए हृदय से विदाय अर्पण की...

प्रियदर्शना की माता यशोदा देवी को,

जिन्होने पिताजी को संयम लेने में प्रतिबंधक बनने की संभावना वाली पुत्री को समझाकर संभान ली...

त्यागमूर्ति प्रभुभक्ता यशोदादेवी को,

जिन्होने दीक्षा के मार्ग पर प्रयाण कर चूके स्वामी के चरणो की रजको मस्तक-आंखो पर लगाकर परम संतोष माना...

गुणहंस विजयजी म.सा.

“यशोदा”

(राग : मैत्रीभावनुं पवित्र झरणुं...)

जे दिवसे महावीर प्रभुए त्यागी थवानुं कह्युं हशे
देवी यशोदाना दिलमां, ते वेळा केवुं थयुं हशे ? देवी...

परण्या त्यारे जाण हती के, प्रीतम छे मुज वैरागी
पण एवो नहि ख्याल जराये, के अमने जाशे त्यागी
जाणीने तमे राजी थयेला के दिलमां दुःख थयुं हशे ? देवी...

एक तरफ छे प्रेम पतिनो, बीजी तरफ छे दीक्षा
एक दृश्यमां भोग दीसे छे, बीजामां भिक्षा
एनो विचार करता मनमां केवुं मंथन थयुं हशे ? देवी...

“तमने नहि जवा दउं स्वामी,” एवुं कही तमे कह्युं हतुं?
“स्वामी! सुखेथी भले सिधावो” एवुं वेण तमे कह्युं हतुं?
विदाय वखते हर्ष हतो के छानुं रुदन कर्युं हशे ? देवी...

कदी ये तमने थयुं हतुं के पतिनी पाछळ हुं जावुं,
नेमनी पाछळ राजुल चाली, एवी प्रीत हुं निभावुं
के नानकडी पुत्री माटे घरमां रहेवुं पड्युं हशे ? देवी...

कोई न जाणे एवी तमारी, केवी हशे ते समस्या ?
महान त्यागी पतिनी पाछळ, केवी हशे ते तपस्या ?
अबोल छे ईतिहास तमारो, तमने शुं शुं वीत्युं हशे ? देवी...

:: दिव्याशिष ::

सिद्धान्तमहोदधि, सच्चारित्रचूडामणि,

स्व. पूज्यपाद आ. भगवंत **श्रीमद् विजय प्रेमसूरीश्वरजी महाराज** के

विनेय स्व. पूज्यपाद पं.प्रवर **श्री चंद्रशेखर विजयजी म. साहेब**

*** कल्पनासृष्टि ***

युगप्रधानाचार्यसम पू.पं. **चन्द्रशेखरविजयजी** महाराज साहेब

***: लेखक :: ***

मु. गुणहंस वि.

*** :: सौजन्य :: ***

साधु साध्वी के लिए ज्ञाननिधि से * श्रावको के लिए एक सद्गृहस्थ

*** प्रकाशक ***

कमल प्रकाशन ट्रस्ट

102-अे, चंदनबाला कोम्पलेक्स, आनंदनगर पोस्ट ओफिस के सामने, भट्ठा, पालडी,

अहमदाबाद-7. टेलि. 26605355

प्रथम संस्करण : ३६०० प्रति - पर्युषण वीर संवत (२५४०) गुजराती

द्वितीय संस्करण : ३६०० प्रति - पोष दसमी वीर संवत (२५४१) गुजराती

तृतीय संस्करण : ३००० प्रति - महावीर जन्म कल्याणक (२५४२) हिन्दी

मूल्य : रु. १०/-(दस)

:: Typesetting By ::

पार्श्व ओफसेट - क्रिएटीव प्रकाशन

'विनय', 2/5, जागनाथ कोर्नर, नंदवाणा ब्राह्मण बोर्डींग के पास,

डॉ. याज्ञिक रोड, राजकोट - 360 001. मो. 94269 72609

:: Printed By ::

जगावत प्रिन्टर्स

39, नाट्टु पिल्लैयार कोईल स्ट्रीट, चेन्नई-1. मो. 9884814905 / 14901

:: प्रस्तावना ::

पूज्यपाद गुरुदेवश्रीको प्रभु महावीर बहुत ही प्रिय थे, इसीलिए ही प्रभु के साथ जुडे हुए प्रत्येक व्यक्ति के लिए पूज्यपादश्रीको बहुत लगाव... अत्यंत सद्भावना थी... उसमें श्रेणिकादि के लिए तो शास्त्रमें बहुत-सा वर्णन मिलता, परंतु प्रभु की धर्मपत्नी यशोदा के लिए कहाँ भी किसी-भी प्रकार का विशेष वर्णन आता नहीं था । इसलिए ही पूज्यपादश्री को सतत यह जानने की जिज्ञासा रहती कि, 'यशोदा का जीवन कैसा होगा? प्रभु के साथ लग्न के बाद, संतानकी प्राप्ति होने के बाद, दीक्षा के दौरान... यशोदा के भाव कैसे होंगे?'

उनकी इस जिज्ञासा को संतोष दे सके ऐसे कोई भी शास्त्रपाठ नहीं मिले; और अंत में उन्होंने ही स्वयं की कल्पनाशक्ति से ही खुद की जिज्ञासा को संतोषने का प्रयत्न किया ।

यह पुस्तक याने उनके पुनित करकमलो से लिखा गया, **'राजकुमार वर्धमान का लग्नजीवन !'** संसार से नाता जोड़नेवाले हरेक व्यक्ति द्वारा पढ़ने योग्य-विचारने योग्य ऐसा यह पुस्तक !

प्रश्न यह होता है कि 'यह **यशोदा** पुस्तक किस के लिए ? पू. गुरूदेवश्री के उपरोक्त पुस्तक का विषय भी यही है, तो फिर इस पुस्तक की क्या आवश्यकता है?'

इसका प्रत्युत्तर,

'लग्नजीवन' पुस्तक से पहले पालिताणा में **यशोदा** पुस्तक का लेखन हो चुका था । हा ! पू. गुरूदेवश्रीने वह लिखा नही था, परंतु उन्होंने लिखवाया था । प्रेरणा उनकी,कल्पना भी उनकी... सिर्फ लेखन मेरा ! पालिताणा में सतत वाचनादि के कारण से अतिव्यस्त होने से वे खुद लिख सके वैसी अनुकूलता नही थी ।

परंतु मुझे याद है कि उर्जा के पदार्थ से लेकर बहुत सी कल्पनाएँ वे उनकी कल्पना सृष्टि की है।

परंतु उसके पश्चात् मेमनगर अहमदाबाद में उन्होंने यह लेख फिर से देखा। उनको लगा कि, 'यह लेख संयमीओं के लिए ज्यादा उपयोगी है, संसारीओं के लिए इसी को बदलकर उनकी भाषा में करने योग्य है ।'

उन्होंने नया लेखन किया, जो 'लग्नजीवन...' के रूप में प्रकाशित हुआ ।

आज दस साल के बाद यशोदा का लेख अचानक मेरे पास आया । पू. गुरूदेवीश्री की कल्पना सृष्टि में रमण करने का बहुत ही आनंद आया । मुझे पता है कि 'लग्नजीवन में वे सभी पदार्थ आ गए है ।' फिर भी मुझे ऐसा लग रहा है कि संयमीयोको और परिपक्व संसारीओंको यह 'यशोदा' पुस्तक विशेष लाभदायी बनेगी ।

खास,

इसमें पूज्यपादश्री ने कल्पना के रंग भरे है । शास्त्र के दृष्टिकोण से इसको सीधा कोई आधार नहीं है । और दूसरी ओर कोई विरोध भी दिख नहीं रहा... तो भी छद्मस्थता से उनकी कल्पना में या प्रस्तुत कल्पनाको शब्दो में प्रस्तुत करने में कोई भी क्षति हुई हो, तो अन्तःपूर्वक मैं क्षमा चाहता हूँ ।

'यह कल्पना है' ऐसा विचार को दूर करके कल्पना को वास्तविक मानकर, कल्पना के प्रवाह में यदि आप बहेंगे, तो आप अनन्य अवर्णनीय अनुभूति कर सकोंगे, अनमोल तत्त्व पा सकोंगे, अद्वितिय निर्जरा पा सकोंगे... ऐसा पक्का लगता है ।

तो भी आपको क्या करना है ? उसका निर्णय तो आपको ही करना है।

नोंध : यह पुस्तक **'राजकुमार वर्धमानका लग्नजीवन'** पुस्तक की चतुर्थ आवृत्ति ही समझना ।

अर्हम् रेसिडेन्सी (साबरमती)
अर्हम् पार्श्वनाथ भगवानकी
चतुर्थ सालगिरह का
पवित्र दिन

युगप्रधान आचार्यसम पूज्यपाद
गुरूदेवश्री पं. चन्द्रशेखरविजयजी
म.साहब का शिष्य
मुनि गुणहंस विजय
जेठ सुद ६ वि.स.२०७०

❖

:: अनुवादक का कथन ::

'यशोदा' यह पुस्तक पढ़कर मैं अवाचक रह गया ।

ऐसे तो मैं कोई भी गुजराती पुस्तक पढ़ता नहीं, परंतु मुझे कुतुहूल हुआ कि 'जिस पुस्तक ने बहुत-से लोगों को रुला दिया, वह पुस्तक कैसी होगी?'

बस !!! इस धारा में ही आरूढ मैंने इस पुस्तक का पठन किया ।

और, मैंने भी विरहव्यथा का पठन कर आँसु सारे !

यशोदाजी की क्या **पवित्रता** !

यशोदाजी की क्या **सहनशीलता** !

यशोदाजी की क्या **भावना** !

यशोदाजी की क्या **समर्पणता** !

बस !!! इसका पठन कर-कर, इसका मनन कर-कर, इसका अनुकरण कर-कर और भी सन्नारीयाँ यशोदा का आदर्श लेकर उनके मार्ग को अनुचरित करे यही परम परमात्मा से प्रार्थना !!!

गुरूगुणहंसचरणरजकज,
मु. शीलगुण वि.
बीजापूर, कर्नाटक

※ अनुक्रमणिका ※

क्रं.	विषय	पेज नं.
१.	ब्रह्मचर्य मेरा स्वभाव है	६
२.	हे माँ! मैं ससुराल नहीं जाऊगी...	२२
३.	वैरागी वर्धमान	३१
४.	महाभिनिष्क्रमण के पथ पर	३६

१ ब्रह्मचर्य मेरा स्वभाव है।

तकरीबन २५०० वर्ष पूरानी यह ऐतिहासिक घटना है।

क्षत्रियकुंडके राजमहलके आँगनमें शरणाईओं की मधुर ध्वनि गुँज रही थी। संपूर्ण दिन के काम को निपटाकर सूर्यदेवता भी मीठी निंद में सो गए थे। राजा सिद्धार्थ के स्वजन लग्न प्रसंग को पूर्ण कर खुद-खुदके स्थानों पर विदा ले चुके थे। संपूर्ण राजमहल में नीरव शांति छा चुकी थी।

परंतु... उस समय विशाल शयनखंड के पलंग पर सोलह शणगार सजकर बैठी हुई कन्या के भीतर में शब्दों में व्यक्त न हो सके वैसी अशांति छाई हुई थी ।

वह थी **यशोदा** ! कुमार वर्धमान की अर्धांगिनी! आज उसके आनंद की सीमा नहीं थी। कई महिनों से जिस दिन का वह इंतजार कर रही थी, वह सुवर्णदिन आज उग चुका था । जभी पिता समरवीरने पूछा था कि, ''बेटा यशोदा ! तेरी सगाई सिद्धार्थ नंदन वर्धमान से करने का विचार मैं कर रहा हूँ। तुझे वह कुमार अच्छा लगेगा ना?'' उस समय ही उसके हृदय में आनंद का सागर उछलने लग गया था । शरम के मारे वह एक अक्षर भी बोल पाई नहीं थी। मधुर हास्य रेलकर वह चली गई थी । पिता समझ गए और दूसरे ही दिन तत्काल ही बुजुर्ग मंत्री को क्षत्रियकुण्ड की ओर रवाना किया । खुदकी प्रिय लड़की को वर्धमान के साथ स्नेह बँधन से बाँधने की बिनती के लिए ही तो !

परंतु इन दो दिनों के दौरान यशोदा मानसिक रीत से बहुत परेशान हो गई ।

''सुना तो है कि वर्धमान को संसार के सुखों में कोई भी दिलचस्पी नहीं है । और ऐसे भी इन्द्रोने उनको चोबीसवे तीर्थंकर के रुपमें जन्माभिषेक कर ही दिया है । इसलिए वे संसार को छोड़कर, अनगार बनकर विश्व के शणगार स्वरूप तीर्थंकर बननेवाले है, यह बात तो नक्की ही है । तो क्या वे मेरा स्वीकार करेंगे? उन्होंने मेरे जैसी कितनी ही राजकन्याओं के प्रस्ताव ठुकरा दिए है ।

बिचारी उन राजकन्याओ के अत्यंत रमणीय चित्रों को लेकर उनके मंत्री गए थे । परंतु वर्धमान ने तो उन चित्रों को देखने तक का भी कष्ट किया नहीं था। मंत्री तो कह-कहकर थक गए कि 'हे कुमार ! एकबार चित्र तो देखिए।' परंतु वर्धमानने तो दिल को जला दे वैसा उत्तर दिया । ''मंत्रीजी! साक्षात्

देवांगणाएँ भी मेरे सामने आकर खड़ी हो जाए, तो भी मुझे उसमें बिलकुल दिलचस्पी होती नहीं । तो यह जड़ चित्रों को देखने से तो मुझे क्या अच्छा लगेगा?'' ऐसे वर्धमान क्या मेरी मगनी स्वीकारेंगे? नहीं नहीं ! मुझे तो अशक्य ही लग रहा है, ऐसा मेरा सौभाग्य कहाँ से? कि तीनलोक का भरथार बननेवाला पुरुष मेरा प्रियतम बने ।''

यह विचारों के प्रवाहने यशोदा को दुःखी दुःखी बना दिया। और दूसरी तरफ आश्वासन देते हुए विचार भी उनके दिमाग में आने लगे, ''तीर्थंकर शादी नहीं ही करते ऐसा नियम नहीं है । शायद मेरा भाग्य जाग जाए, और वे हा कह दे तो!''

ये सभी विचारों से यशोदा दो दिन बहुत परेशान हुई । 'ना' सुनने को तैयार नहीं, तो 'हाँ' आएगी वैसी आशा नहीं । कुछ भी खाए-पीए बिना दो दिन पसार हो गए । ''क्या जवाब आएगा !'' इस विचार में ही गहरी रात को कब निंद आ गई इस बात का यशोदा को पता ही नहीं चला ।

''बेटा, यशोदा ! उठ, तेरे लिए अत्याधिक आनंद के समाचार है । वर्धमान कुमार ने तेरा स्वीकार कर लिया है । रात को ही आए हुए मंत्री ने मुझे यह समाचार दिए है ।'' सुबह को खुद पिताजी समरवीरने यशोदा को जगाकर यह बात का बयान किया, तभी यशोदा दंग रह गई । क्या बोलना ? क्या करना ? यह उसे मालुम नहीं हुआ । हर्षाश्रु से वह पिताजी को गले लग गई । पिता भी पुत्री के आनंद में हर्ष के अश्रु बहाते रहे ।

दो महिने के बाद का शादी का मुहुर्त निकला । यशोदाने बड़ी मुश्किल से सतत फफड़ात के बीच यह दो महिने पसार किए । ''वर्धमान बदल तो नहीं जाएँगे ना ? नेमिनाथ राजीमती को छोड़कर चले गए, वैसे ये भी मुझे तरछोडेंगे तो नहीं ना ? हाँ, शक्य है । तीर्थंकर सभी एक जैसे ही होते है, नारीओं के प्रति अतिनिष्ठुर !''

परंतु ऐसा कोई भी अनबनाव नहीं हुआ । ठाठमाठ से लग्न प्रसंग की पूर्णाहुति हुई । सहेलीओने बहुत अच्छी तरीके से यशोदा को शणगारा । शयनखण्डमें अकेली उसे छोड़ दिया गया । वर्धमानकुमार की आगमनकी घडियां गिनी जा रही थी । घुंघट से मुख को ढककर बहुत ही उत्कंठा के साथ यशोदा कुमारकी राह देख रही थी । 'नारीओं के लिए पति का सुख ही सर्वस्व होता है' और अधिक में यह तो लग्नकी प्रथम ही रात्री थी।

''ठक्...ठक्...'' किसी के आगमन की ध्वनि सुनाई देने लगी । यशोदा के अंग अंग में एक अवर्णनीय ख़ुशी का संचार हुआ। पंडितो के पास अध्ययन करते समय जो कामसुखो का वर्णन सुना था, महिनो से जिस क्षण के लिए वह खुद अत्यंत उत्कंठित बनी थी, वे घडीया, वे क्षण बहुत नजदीक आ गई थी।

पैर की ध्वनि ज्यादा से ज्यादा स्पष्ट होने लगी। कुमार वर्धमान शय्या तक पहुंच गये। यशोदा हालाँकि संसार के सुख को पाने के लिए तलपापड़ थी, परंतु वह थी तो आर्यदेशकी सन्नारी! आर्यदेशकी मर्यादाओंको अच्छी तरह से समझनेवाली और उसके प्रत्येक तत्त्व पर दृढ़ विश्वास रखनेवाली! वह बहुत अच्छे तरीके से जानती थी कि, स्त्री के लिए पति मात्र कामसुख पाने का साधन ही नहीं, परंतु उपासना करने का स्थान भी है। स्त्री के लिए पति जितना इच्छनीय है, उससे करोडों गुण ज्यादा पूजनीय है।

कारण ? आर्यदेशमें ब्रह्मचर्यकी महिमा अपरम्पार है। इसमें भी आर्यनारी के लिए तो शील प्राण से भी अधिक प्रिय है। पति के साथ गांठ बंध जाने से वह शील सुरक्षित बन जाता है। इसलिए यदि शील की रक्षा करनेवाले माता-पिता और गुरूजन पूजनीय बनते है तो पति क्यों पूजनीय न बने?

यशोदा शय्या पर से खडी हुई। वर्धमानके चरणों को स्पर्श करने के लिए नीचे झुक गई। अहाहा ! परम सौभाग्य था वह यशोदाका ! जिनके चरणोको स्पर्शने के लिए करोडो देव दौड़भाग करते है, धक्का-मुक्की करते है, उन चरणों को ऐकांतमें हकसे स्पर्शने की तक यशोदा को मिली।

वर्धमानने त्वरीत ही दो हाथो से यशोदा के दो बाहु पकडकर उसे खडा किया और शय्या पर बिठाया। वे खुद थोडे दूर उसके बाजु में बैठ गए। क्या बोलना? यह दोनो को ही पता नहीं चल रहा था। एक ओर थी यशोदा उसकी इच्छा थी की राग से भरी बाते करते हुए रात पसार की जाए। दूसरा आत्मा चाह रहा था कि वैराग्यकी धारा बरसाकर शत्रु के घरमें ही शत्रुको मार दिया जाए। हां जी! कुमार वर्धमान और विषयसुखोंका राग इन दोनो के बीच भयंकर दुश्मनावट थी। नयसार के भवमें इस शत्रुता के बीज का रोपण हुआ, नंदन राजर्षि के भव में यह शत्रुता चरम सीमा पर पहुँची और आज तो 'मरुं या मारु?' के भावों के साथ दो महारथी वर्धमान और मोहराज युद्ध के मेदानमें एक दूसरे को तहस नहस करने के लिए तैयार हुए थे।

दो-चार मिनिट श्मशान जैसी शांति का साया रहा।

और भविष्य में होनेवाले हजारो कामीओ को आश्चर्यचकित कर दे वैसा ऐतिहासिक वार्तालाप यह दो पति-पत्नी के बीच शुरू हुआ।

वर्धमान : ''यशोदा ! मुझे पाने के लिए तुने कितना सारा भोग दिया? बरसो तक जिनके आँचल में तु पली, जिनके वात्सल्य की धारा में स्नान करती रही उन माता-पिता को तुने हमेशा के लिए छोड दिया, सिर्फ मेरे लिए। तेरे जीवन का सर्वस्व तुने मेरे चरणो में सौप दिया।''

यशोदा : ''नही स्वामिन् ! ऐसा कदापि मत बोलना, पुष्पो की महकती सुगंध के कारण यदि भ्रमरीया उनके तरफ आकर्षण का अनुभव करती हुई उनके समीप आती है तो इसमें भ्रमरीयो ने क्या भोग दिया ? सच्चा कमाल तो उन पुष्पो का है, उनकी सुगंध का है । वैसे ही आपके विश्व व्यापी गुणो को मैने बहुत सुना था । इसलिए ही आपको भरथार बनाने का निर्णय मैंने कर लिया । गभराहट केवल इतनी ही थी कि, सेकडों राजकन्याओं के चित्रों को भी देखने तकका भी कष्ट नही लेनेवाले आप मेरा स्वीकार करोंगे ? या नही ? परंतु पूर्वभवो में मैंने कोई प्रचंड पुण्य अर्जन किया होगा के जिसके प्रताप से आपने मेरा स्वीकार किया । आपके अंतरमें, आपके चरणोमें मेरा वास हुआ ।''

वर्धमान गंभीर हो गए। उन्हे लगा कि उन्होने किया हुआ जरुरत से ज्यादा औचित्य यशोदा को ज्यादा रागी बना रहा है। वे तो आज यह बात तय करकर ही आए थे कि यशोदा को राग के कीचड से बहार निकालकर वैराग्य की मस्तीमे रममाण कर दूंगा। वर्धमानने बात को दूसरा मोड दिया।

वर्धमानः ''यशोदा ! तेरा स्वीकार करने की मुझे थोडी भी इच्छा नही थी । 'परंतु माता त्रिशला तो जिद्द पर आरुढ हुए। पुत्रवधु के मुख को निहारने देखने की उनकी इच्छा अदम्य बनी। मैं उनकी तीव्र ईच्छा के समक्ष प्रतिकार न कर सका और ज्ञानबल से मैंने देखा कि थोडे भोगावली कर्म मुझे भोगने बाकी है । उन्हे भोगने के लिए संसार का आरंभ करने के अलावा दूसरा कोई रास्ता नही था, इसलिए इन दो कारणो से अनिच्छा से भी मैंने तेरा स्वीकार किया।''

यशोदा के लिए ये शब्द आघातजनक थे। एक पति ऐसे कह दे कि 'उसे पत्नी के प्रति कोई राग नहीं है।' तो उस बिचारी की क्या दशा होगी ? यह हम सभी समझ ही सकते है । यशोदा का हृदय ध्रुज उठा । वह कुछ बोलने जा रही थी, परंतु उसके मुँह से शब्द ही नहीं निकल पाएँ । बडी मेहनत से कम्पायमान स्वर से वह इतना ही बोल पाई, '' तो क्या आप मुझे चाहते नही ?''

''यशोदा! तू मुझे अच्छी ही लगती है, अत्यंत प्रिय है । मात्र तू ही नही, इस विश्व के सभी जीवो के प्रति मेरा अपार वात्सल्यभाव है। वह जीव धरती पर रहने वाला कोई कीडा हो या आसमान में उडता इन्द्र हो! मैं प्रत्येक जीवोको बहुत चाहता हूँ । मेरे प्राणोंसे भी अधिक चाहता हूं।

यशोदा! विश्वव्यापी स्नेहभावमें तेरा भी समावेश है।''

यशोदा चिड उठी । ''इसका मतलब क्या है ? आपके मनमें मेरा और उस कीडे का स्थान समान है ? यदि ऐसा ही था तो उसके साथ ही विवाह करना चाहिए था ना ?मेरे साथ क्यो किया ?''

वर्धमानः ''यशोदा ! तू ऐसे क्रोध मत कर ।तू क्या नही जानती कि मैं चोबिसवां तीर्थंकर होनेवाला हूँ ? तीर्थंकरो को संसार के सुख में रुचि नही होती इस बात का तुझे पता नही है क्या ? ''

यशोदा : ''नही ! बिलकुल नही ।'' तीर्थंकर तो केवलज्ञान पाने के बाद संसार के सुखो में हमेंशा के लिए विरक्त बनते है ।परंतु जब तक संसारमें होते है, तब तक तो रागी-भोगी होते है । तीन - तीन तीर्थंकर चक्रवर्ती बने है । उन्होने हजारो पत्नीओ के साथ भोगो का आसेवन किया है । फिर क्यो न वे भोग भोगवाली कर्मो के उदय से भोगने पडे परंतु उन्हे राग नही होता ? ऐसा हम कैसे मान सकते है ?

आपने मेरा स्वीकार किया तभी मैं, ऐसा समझी कि मैं आपको अच्छी लगी हूँ । मैं जानती ही हूँ कि, आप थोडे बहुत समय में संसार त्यागी बननेवाले ही है । परंतु जब तक आप संसार में रहोगे, तब तक तो मेरी इच्छा पूर्ण करोगे ही । जिन सुखो के लिए मैने शादी की है, वह मुझे अर्पण करोगें, ऐसा मैं मानती हूँ ।''

वर्धमान : ''यशोदा तू नही जानती के आर्यनारी का एक ही धर्म होता है । पति की इच्छा को अनुसरना । पति के सामने जिद करे, दावा करे वह क्या ..... आर्यनारी कहलाने के लायक है ?''

यशोदा के लिए तो अभी जीवन - मरण का प्रश्न खडा हो गया था। खुद पर आर्यनारी नही होने का गर्भित आक्षेप खुद वर्धमान कर रहे थे। यशोदा ने मर्यादा तोड़ दी। शादी की प्रथम रात को पत्नी का घूंघट दूर करने का काम पति का है । परंतु अभी यह काम यशोदा को ही करना पडा। उसने मुख के आगे से घूंघट निकाल दिया। धारदार नजर से वह वर्धमान को निरखती रही ।

यशोदा : 'स्वामी! आर्यनारी के कर्त्तव्य क्या है ? यह आप मुझे समझा रहे हों ? आप खुद यह सोचो कि इच्छाओ से भरी हुई कन्या को घर लाने के बाद आर्यपति का क्या कर्त्तव्य है? पति के कदमों से कदम मिलाना, पति की हरेक इच्छा को अनुसरना, यह तो मेरे प्रत्येक रोम में बसा हुआ है । परंतु इसका मतलब यह नही है कि जिस कारणसर मैं आपकी अर्धांगिनी बनी हूं, उसका ही बलीदान मैं दे दूं। पत्नी तो कामसुखो के लिए बनना होता है, नहीं कि भक्ता बनकर पति के गुणो को सिर्फ गाने के लिए ।

मैं संपूर्ण आर्य देश की मर्यादाओं का पालन करनेवाली स्त्री हूँ, परंतु मुझे ऐसा लगता है कि आप आपके आर्यपुरूष होने की मर्यादाओं को भूल चुके हैं। शरण में आई हुई, शरण को स्वीकारनेवाली नारी को पूरा संतोष देना, उसके प्रति सन्मान धारण करना यह आर्य पुरुष की जवाबदारी है।

वर्धमान : ''यशोदा! मैंने तुझे ऐसा कब कहा कि मैं तुझे काम सुख नही ही दूंगा ? मैनें कहाँ यावज्जीव ब्रह्मचर्य की बात कही है? के तुझे अकडाना पडे ।''

वर्धमान अपने वचनो पर बहुत काबू रखकर बोल रहे थे। वे जानते थे कि मैं खुद भी मन में आए वैसे बोलूँगा तो यशोदा को बहुत आघात लगेगा। उसका जीवन विषमय हो जाएगा। वर्धमान को यह मंजूर नही था।

यशोदा : ''अरे ! नाथ ! आपने यदि ऐसा कहा होता तो बहुत अच्छा होता । आप ने तो मुझे उससे भी ज्यादा आघातजनक शब्द कहे है । आपको मुझ पर स्नेह नही है यह शब्द ही मुझे कांटो के समान खुंच रहे है ।

क्षमा करना स्वामी! परंतु जो पुरुष मुझ पर प्रेम रखता न हो फिर भी ऐसे पुरूष के साथ भी कामसुखो को सेवने के लिए जो तैयार हो जाती है वह आर्यनारी नही, वह तो वेश्या कहलाती है । हवसखोर पुरूष धनका पुंज करकर, हृदय में लेश भी स्नेहभाव के बिगर मात्र काम राग से ही वेश्याओं के साथ भोग का सेवन करते है और निर्लज्ज वेश्या धन के लोभ से उन पुरुषो का आतुरता से स्वीकार करती है । नाथ! मैं ऐसी वेश्या नहीं हूँ। यदि आप हृदय से मुझे चाहते नही हो तो फिर आपके पास कामसुखो की अपेक्षा रखनी मेरे लिए पाप है ।

आर्यपुत्र! आप यह मत भूलना कि सती स्त्री के लिए उसके स्वामी का अगाध स्नेह वह ही जीवन है, स्वामी के पास से मिलनेवाले काम सुख तो छोटे से तोहफे के अलावा कुछ नही है । आर्यनारी को यह बात पता ही होती है की पतिको उस पर अगाध स्नेह होता है और इसलिए वह पति उसे कामसुख दिए

बिना रहता नही है ।''

वर्धमान : ''यशोदा! मैंने तुझे बयान किया ही है ना कि मुझे तुझ पर बहुत स्नेह है, अगाध स्नेह है ।''

यशोदा : ''कौन सा स्नेह? वो कीडे को और इन्द्र को समान गिननेवाला स्नेह ही ना ? मेरे मन उसकी कोई किंमत नही है। हालाँकि लोकोतर जगतमें उस स्नेह को तीर्थंकरत्व का बीज माना गया हो, परंतु मुझे उससे कोई लेना देना नही है । मैंने तीर्थंकर से नही, परंतु राजकुमार वर्धमान से विवाह किया है ।''

वर्धमान : ''यशोदा! सचमुच कह रहा हूँ कि एक तीर्थंकर की आत्मा के तौर पर मुझे तुझ पर विश्वव्यापी करूणा तो है ही। परंतु उससे ज्यादा तू मेरी जीवनसाथी बनी है, मुझे तेरा सर्वस्व बनानेवाली बनी है, इसलिए मुझे तुझ पर विशेष स्नेह भी है ही।

परंतु यशोदा! इस स्नेह में निर्दोषता छलकती है । तू मेरे पास सदोष स्नेह की अपेक्षा रखती है । बोल ! तुने ही अभी कहां ना? आर्यनारी पति के स्नेह की ज्यादा झंखना रखती है, कामसुख उसके लिए गौण होता है। पति प्रसन्न होकर यदि प्रदान न करे तो क्या वह सामने से उसे चाहती है ? यह बात सच्ची है ना ?

तो सुन ! मैं सत्यवादी के तौर पर प्रसिद्ध हूँ और मैं तुझ से कह रहा हूँ कि मुझे तुझ पर मेरी पत्नी होने के नाते मेरी जीवनसंगिनी होने के नाते विशेष स्नेह है ही। वह स्नेह मुझे विश्व के जीवों के प्रति नही है। परंतु इसी के साथ मेरी तुझसे एक विनंती है कि मेरा वह स्नेह सर्वथा निर्दोष है । तू उसमें सदोषतावाली झंखना छोड दे। मैं जब तक संसार का त्याग न करुं, तब तक हम परस्पर निर्मल स्नेहभाव के साथ रहे और हमेशा के लिए कामसुखो को तिलाजंलि दे । बोल यशोदा ! क्या तुझे यह मंजुर है ?''

यशोदा खुद के ही कहे गए शब्दो में फस गई। वर्धमान के इस प्रत्युतरने उसे अधिक मुंझा दिया । यह बात तो तय ही थी कि यशोदा पति के स्नेह को ही ज्यादा महत्व देती थी । परंतु इसलिए कामसुखो को तिलाजंलि देने की तैयारी उसकी नही थी ।

यशोदा ने बात को दूसरा मोड दिया -

यशोदा : ''नाथ! मुझे तो यही पता नहीं चलता कि आप किस कारण

से इन विषयसुखों से दूर भागने की बात कर रहे हो । उन्हे भोगने में आपको क्या दिक्कत है ?

बहुत से तीर्थंकरोने विषय सुखो का सेवन किया ही है । तो आप क्यों ना बोल रहे हो ? क्या आपको ऐसा डर है कि एकबार इन विषयसुखों का सेवन करने से आपका वैराग्य कम हो जाएगा, निर्बल हो जाएगा ?

यह बात तो शक्य नहीं है । मैं आपसे वादा करती हूँ कि आप जभी अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार दीक्षा के मार्ग पर प्रयाण करोंगे, तभी मैं आपके मार्ग में कंटक नहीं बनूँगी । आपको सहर्ष सम्मति दूँगी । परंतु तब तक तो आप मुझे सुख दीजिए ।''

वर्धमान : ''यशोदा ! मुझे इन सांसारिक सुखों में दिलचस्पी ही नही होती ।

यशोदा : ''परंतु क्यों? क्या मेरी काया में अशुचि भरी हुई है, इसलिए?''

वर्धमान : ''यशोदा ! अशुचि के विचार करकर विषयसुखों से दूर रहना यह प्राथमिक विकास के लिए १००% जरूरी है।

जिसका मन विषयसुखों की ओर जाता हो और फिर भी वह ब्रह्मचर्य के पालन की इच्छा रखता हो, तो उसे मन को काबु में रखने के लिए अशुचि भावना लानी पड़ती है । उसे नारी के शरीर में विष्टा का दर्शन करकर मुँह बिगाड़ना पडता है । वास्तविकता में यह मार्ग अब्रह्म वासनाओं से बचने में उपयोगी होने के बावजूद भी उत्तम मार्ग नहीं है ।

क्या तुझे पता है ? पार्श्वनाथ भगवानने २२ परिषहो को सहन करने का उपदेश उनके साधुओको दिया है । उसमें जुगुप्सा परिषह का भी कथन है । पार्श्वनाथ भगवान कहते है कि 'साधु भगवंतो ! आप रस्ते में से पसार हो रहे हो और एक तरफ गिरी हुई विष्टा में से दुर्गंध आवे तो आपको मुँह बिगाड़ना चाहिए नहीं, नाक बंध करना चाहिए नहीं, आपके लिए तो सुगंध-दुर्गंध दोनों ही समान है । यदि आप दुर्गंध आने से मुँह बिगाडते हो, नाक बंध करते हो, विष्टा की बिभत्सताको देखकर यदि आँख को खिंच लेते हो तो इसका अर्थ यह हुआ कि आपको सुगंध अच्छी लगती है । आपको सुंदर रुप के प्रति आकर्षण है । मुनिओ ! तो तो फिर आपका ब्रह्मचर्य खतरे में आ जाएगा । रुप और सुगंध का राग होना, कदरुप और दुर्गंध का द्वेष होना यह ब्रह्मचर्य का अतिचार है । इसलिए आप इस कदरुप या दुर्गंध को देखकर/सुंघकर उस पर थूं-थूं मत करना ।

इसलिए हे यशोदा ! नारी के शरीर में विष्टा का दर्शन कर, उसकी दुर्गंध से परेशान होकर, उससे दूर भागना यह भी तो वास्तविकता में जुगुप्सा मोहनीय का ही उदय है। यह मार्ग तो अब्रह्म के बड़े पाप से बचने के लिए प्राथमिक कक्षा के जीवों के लिए तीर्थंकर ने मार्ग बताया है । बाकी यशोदा ! मुझे तो हरेक स्त्री शरीर में एक विशुद्ध आत्मा का ही दर्शन होता है ।

यशोदा! इसलिए ही मुझे स्त्री को देखकर विकार नहीं जागते । वह तो भगवान है । उस शरीर में रहा हुआ आत्मा तो स्वत: मैं ही हूँ । मुझे सभी जीवों के साथ अभिन्नता की अनुभूति ही होती है । **जितनी दिलचस्पी मुझे खुद में है, उतनी ही दिलचस्पी मुझे सर्व में है ।**

यशोदा! मुझे सर्वत्र मात्र जीव का ही दर्शन होता है। अशुचि का दर्शन करने का समय ही मुझे कहा है? उस शिवरुप जीव को देखकर मैं अवर्णनीय रोमांच का अनुभव करता हूँ। हा ! और बहुत बार अश्रुधारा भी बह जाती है - इस बिचारे सर्वथा दोषरहित आत्मा को दोष भरपूर बनकर जीते हुए देखकर। अनंत ज्ञान का मालिक वह चेतन अज्ञानता के सागर में डुबा है। अनंतशक्ति का स्वामी वह आत्मा खुद के स्वरुप को देखने जितनी भी शक्ति से वियुक्त हुआ है।

अहो! मोहराज ने इस चेतन को कैसे तहस-नहस कर दिया है!

यशोदा! तू ही मुझे बता कि जिस देह में मुझे खुदा के परमात्मा के दर्शन होते है उस ही के साथ कामसुखोंका सेवन करने की मुझे इच्छा कैसे होगी? क्या कोई पुत्र मातामें विकारग्रस्त बनता है? क्या कोई पुत्री को पिता में विकार जागते है?क्या कोई भक्ता स्त्रीको परमात्मामें खराब भाव जागते है?

वैसे ही यशोदा! मुझे सभी देहोमें वंदनीय, पूजनीय सिद्धात्माओंका दर्शन होता है। यशोदा ! मैं कैसे वहा रागी बन सकता हूँ? विकारी बन सकता हूँ ?

केवल वासना के पाप से बचने के लिए भले ही प्राथमिक कक्षा के जीव कामचलाउ अशुचि भावना का उपयोग करे। परन्तु अंतमें उन्हे ज्ञानयोग तो साधना ही होगा। इसके बिना उनका निस्तार होना अशक्य है।''

यशोदा तो एकतान होकर सुनती ही रही। यह बात तो उसके लिए संपूर्णतः नई ही थी। माता के पास उसने इतना ही सिखा था कि 'यह मानवशरीर अशुचिओंसे भरा हुआ है। और इसलिए साधक जीव उसमें राग करते नही' । परंतु

आज उसे महसुस हुआ कि वह ज्ञान अधुरा था। महान योगीओं का स्वभाव ही ऐसा हो जाता है कि अशुचि हो या शुचि उन्हे सर्वत्र परमात्मा के ही दर्शन होते है। इसलिए ही उन्हे अशुभ भाव जागते नहीं।

यशोदा को सिर्फ इतना ही गम था कि वर्धमान जो बात कर रहे थे उसकी अनुभूति उसे नहीं हो रही थी। उसके मनमें से तो कामसुखोकी इच्छा लेश भी डगी नहीं। मात्र वह इतना ही पा सकी के ''ऐसे भी आत्मा होते है कि जो सहजरूप से निर्विकारी होते है।''

इसलिए ही वह खुदकी जिद छोड न सकी।

यशोदा : ''नाथ! आपकी सब बात सच्ची है, परन्तु यह मेरे अनुभवमें नही है। मैं आपको स्पष्ट बयान कर रही हूँ के, मैं संपूर्णतः संसार के रंगो में रंगी हुई हूँ, और आपके पास संसार के सुखोंकी अपेक्षा रखती हूँ। आप उसमें यदि मुझे ना कहेंगे, आप उसके लिए यदि तैयार नहीं होंगे, तो एक निर्दोष नारी को ठगनेका पाप आपके ललाट पर लिखा जाएगा। मैं अनजाने में कुछ खराब कर बैठूंगी।

और यदि लोगोको मालुम होगा कि वर्धमानने यशोदाको मात्र दुःख ही दिया है, निष्ठुर बन कर उसकी इच्छाओं को धर्म के नाम से कुचल दिया है, तो लोग आपकी ही निंदा करेंगे। लोग कहेंगे कि 'यह तो अभी नए तीर्थंकर कौन-से खडे हुए है? कि जो संपूर्ण जगत को सुखी करने जा रहे है, परंतु खुदकी पत्नी को तो सुखी कर नही सकते? विश्व पर करूणा बरसानेवाले यह तीर्थंकर आत्माए शरण मे आई हुई अबला पर तो करूणा बरसा सकते नही है। आरे जभी घर के ही लोग भूखे मरते हो, तभी दानशाला खोलनी, वह करूणा कहलाती है कि मुर्खता?

स्वामिन! लोगों के मुँख पर तो ताला मारना आपके लिए अशक्य बनेगा। आप खुद तीर्थंकर होने के बावजूद भी तीर्थंकरो की - उनकी करूणा की निंदा के पाप के भागीदार बनोगे।

नाथ! गलत मत मानना। परंतु जभी मेरी सगाई आपसे नक्की हुई, तभी तो में बहुत ही खुश थी, परंतु तभी ही मेरी सहेलीओने मुझे सीख दी थी कि 'यशोदा इस वर्धमान पें विश्वास मत रखना। यह तीर्थंकरो के आत्माएँ स्वतः के स्वार्थ के लिए भलभलो को भटकते कर देते है।'

प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेवने सगी माताको १००० बरस तक रोती छोड दी

थी। एक बार भी उसे दर्शन देने तक की भी करूणा नहीं दिखालाई।

और वो नेमिनाथ! अरे निष्ठुरता की भी हद होती है। लग्न मंडप तक आ पहुँचे और वहाँ से वापस फिर गए। क्या उन्हे विचार भी नही आया होगा? के वो राजीमतीका क्या होगा? तीन ज्ञान के मालिक क्या स्त्रीओं के हृदयको पहचानते नहीं होंगे? अरे यह तो ठीक ! परंतु सगे माँ-बाप समुद्रविजय और शिवादेवी वापस फिरते हुए नेमिनाथ को रोकने के लिए रथ के मार्ग में जमीन पर सो गए , तो भी कहलाते सुपुत्र नेमिको उनकी दया नही आई।

यशोदा! वे तीर्थंकर यह भूल गए कि उन्हें तो कर्मो के सामने ही कठोर बनना है, जीवो के समक्ष नहीं। परंतु पडी हुई आदत-स्वभाव कैसे जाएगी/ जाएगा? सभी तीर्थंकर एक ही धून में लीन होते है कि मेरे कर्मो को मार दू, काट दू, मेरे दोषो के छोटे छोटे टूकडे कर दू और इस धूनमें ही वे तीर्थंकर इतने निर्दय हो जाते है कि पत्नी को निराधार रख देते है, माता-पिता को रखडते छोड देते है, पुत्रो-पुत्रीओं को अनाथ कर देते है।

यशोदा! यह वर्धमान भी इनकी ही जमात का है। वह विश्वका संत भले बने, परंतु तेरा कन्त तो नही ही बनेंगा। तुझे अत्यंत दुःखी कर देगा।

यशोदा! अभी भी विचार कर ले। सगाई तो तोड भी सकते है। यह तेरी जिंदगी का सवाल है।''

परन्तु तभी तो मैने आपके राग से मेरी सहेलीओं को धिक्कारा। ''तुम सभी मेरे सुखकी ईर्ष्या से जल रही हो, क्यों? वर्धमान जैसा पति तुमे न मिला और मुझे मिला यह तुम से सहन नही होता। इसलिए ही तुम मेरे सुखों को जलाने के लिए आई हो । आज मुझे तुम सभी की असली पहचान हुई। सहेलीया! आज से हमारे सब नातो को मैं तोड रही हूँ। तुम कभी भी मुझे मिलने आना नहीं, मेरी शादी में भी तुमे आने की कोई जरूरत नही है।''

स्वामिन्! मेरी प्राणप्यारी न जाने कितनी ही सहेलीओं को मैंने मात्र आपके अनुराग/विश्वास से तरछोड दी। परंतु आज ऐसा लग रहा है कि वे सच्ची थी। आप सभी तीर्थंकर असल में स्वार्थी हो, स्त्री की भावनाओं को कुचलना यह आपके लिए दायाँ हाथ का खेल है ।

कोई अर्ज नही है नाथ! आप सत्ताधारी हो, आप पर हमारा क्या चलता है। आपको जो करना हो वह आप कर सकते हो। आपको रोकनेवाला, टोकनेवाला कौन इस विश्वमें उत्पन्न हुआ है? कि मैं अबला आपको टोक सकु?

आपको जैसे सुख उपजे वैसे आप करो, परंतु एक बात ध्यानमें रखना कि आप स्वभान भूले हो । अधिक मात्रावाले विरागभावने आपको आपके कर्तव्य भूला दिए है ।''

यशोदा चूप हो गई। उसने खुद के हृदय की सब व्यथा बयान कर दी थी।

बिचारे वर्धमान! भविष्य में जो विश्व के करोडों जीवोको वासनाओ के पापोमें से छुडवाकर मुक्त बनाने वाले थे, वे आज तो एक नारी को भी विरागभावमें स्थित कर न सके। वर्धमान तो वैसे भी करूणावतार थे। यशोदा के गमगीन चहेरेको देखकर उनका आत्मा परेशान हो गया। उन्हें श्रद्धा थी कि, 'वे खुद यशोदाको विराग की मस्तीमें लीन कर सकेगे' और इसलिए ही उन्होंने लग्न करने का साहस किया था। परंतु वे निष्फल गए।

समय बहुत बीत चुका था। यशोदा भी दिन के परिश्रम से थक चुकी थी। वर्धमानको लगा कि 'अभी उसे आराम करने देना चाहिए।'

वर्धमान : यशोदा ! मैं तेरी सब बातो का स्वीकार करूंगा। तेरी जो इच्छा होगी उसे पूर्ण करूंगा। सप्तपदी के फेरे फिरते समय तुझे हमेशा हसते रखने की प्रतिज्ञा का मैं अवश्य पालन करूंगा। तू तेरे मुख पर से उदासीनता को दूर कर। तू एक बात नक्की मानना कि यह वर्धमान तुझे कभी भी दुःखी होने नही देगा। वह खुदकी करूणा सबसे पहले तुझ पर ही बरसाएगा। यशोदा ! तेरा मुझ पर रहा हुआ विश्वास मैं नही तोडूँगा। बस मुझे इतना ही कहना है।

तू बहुत दिनों की थकी हुई लग रही है। समय भी बहुत हो गया है। अभी तू सो जा। हम सबेरे बात करेंगे।''

इतनी जल्दी से वर्धमान ने यशोदा की बात स्वीकार ली, उससे यशोदा को बहुत संतोष हुआ। उसने वर्धमान के चरण स्पर्श किए, और शय्या पर सो गई। अतिशय थकान और रात्रिजागरण के कारण यशोदा तत्काल ही निंद्राधीन हो गई। यशोदा को तो तीन लोक का साम्राज्य मिलने जितना आनंद था।

परंतु वर्धमान को अस्वस्थता का अनुभव हो रहा था। वे अत्यंत उदास हो गए । 'क्या मुझे यशोदा को खुश करने के लिए काम सुखो का सेवन करना होगा? बारबार सेवन करना होगा? परंतु मुझे उसमें थोडी भी रूचि नहीं है।

पानी में से यदि ज्वाला निकले, जहरीला नाग के मुख में से यदि अमृत की डकार निकले, तो मेरे में विषय सुखो के तरफ का लगाव उत्पन्न होगा।

वो धन कमाने में लंपट बने हुए लोभीजन! घर पर बैठी हुई स्त्रीओ के

तरफ देखते भी नहीं है, उन्हे धन में ही ऐसा रस होता है कि अतिरूपवती पत्नी भी उन्हें आकर्ष नहीं सकती।

मैं भी मेरे आत्मधनको पाने मे मशगुल हूँ। निर्विकारीता की मस्ती में संपूर्ण डूबा हुआ हूँ। सर्वत्र शिवतत्त्व का दर्शन करते हुए आनंदी हूँ। स्त्री मात्र में सिद्ध भगवन्तों के दर्शन करकर पवित्र हूँ । जीवमात्र में करूणासभर दृष्टि का पात करकर मेरी आत्मा खुश हो रही है।

इस **आत्मानंद** को छोडकर एक स्त्रीको **कामानंद** देने के लिए मुझे बर्हिर्मुख होना पडेगा?..... नही, 'विष्टा देखकर मुझे जुगुप्सा होती है, इसलिए मुझे स्त्रीसुख नहीं चाहिए' यह बात तो गलत ही है। तो क्या यह काम सुखों को सेवने से मेरी दुर्गति होगी? नहीं.... ऐसा भी नहीं है। इस भव में मेरी मुक्ति निश्चित है। कोई भी पापकर्म मुझे दुर्गतिमे ले जाने के लिए शक्तिमान नहीं है।

तो फिर क्यों? क्यों यह आतम विषयसुखों के लिए तैयार नही हो रहा? उसे क्या चटक रहा है?

हा, मेरा स्वभाव ही अभी अंतर्मुख रहने का हो गया है।

मेरा स्वभाव ही अभी आत्मसुखों मे लीन रहने का हो गया है।

यह स्वभाव छोडकर परभाव में जाना आत्माको लेश भी अच्छा नहीं लगता। बस यही एक कारण है कि आत्मा उससे, काम सुखों से दूर रहना चाहता है।

सबुर !!! गरमी ही देने की स्वभाववाली अग्नि शीतलता कैसे दे सकती है?

वो स्थिर ही रहने के स्वभाव को धारण करनेवाला मेरू कैसे डगेगा?

शीतल चाँदनी को ही बरसाने की प्रकृतिवाला चंद्र अंगारोकी वृष्टि कैसे करेगा?

स्वभाव नाम की वस्तु ही ऐसी है कि जिसका त्याग हो ही नही सकता। चाहे उतना प्रयत्न कर लो तो भी वह छुटता नही, तुटता नही।

निर्विकारी ही रहना यह मेरा **स्वभाव** है।

आत्मिक आनंद में ही मशगुल रहना यह मेरा **स्वभाव** है।

तो मैं कैसे विकारी, बाह्यानंदी, सदोष स्नेही बन सकुंगा? अरेरे ! अभी क्या होगा? मैं तो यशोदा को जबान दे चुका हूँ। और उस समय का उसका आनंद यह स्पष्ट सूचन कर रहा था कि वह विषयसुखों को मांगेगी ही। एकबार नहीं, परंतु बारबार, कैसे मैं इस जाल में से मुक्त हो पाउँगा?

मैं मेरे आत्मिक बल पर भरोसे वाला था। चाहे कैसी भी स्त्री आए, उसे एक रात में विरागदेवी बनाने की ताकत मुझमें है ऐसा मैं मान रहा था। इसलिए ही माता त्रिशला को खुश करने के लिए मैने यह साहस उठाया। परंतु अंगुठे से मेरू को ध्रुजाने वाला, अनंत कर्मो का नाश करनेवाला मेरा बल एक अबला के सामने निष्फल साबित हुआ।''

वर्धमान निंद्राधीन नही हो पा रहे थे । विचारों के चक्रव्यूह में वे ऐसे फस गए कि निंद्रादेवी उनकी आँखो में प्रवेश भी नही कर सक रही थी ।

अचानक उनकी दृष्टि यशोदा के सोहावने मुखारविंद पर गिरी। पश्चिम दिशा में अस्त होने की तैयारी कर रहे चंद्र की चांदनी उस मुखकमल को अधिक देदिप्यमान कर रही थी। और वर्धमान के हृदय में एक तेज प्रकाश का चमकारा हुआ। ''बराबर! उपाय मिल गया, खुद यशोदा ही विरागी बन जाए वैसा उपाय मिल गया। मेरे शरीर मे से और उसमें भी विशेष से मेरे हाथो में से पवित्र पुद्‌गलो का प्रवाह सतत बहता ही रहता है। और उसकी शक्ति तो अप्रतिम है। तीर्थंकरो के हाथो से निकलता हुआ वह श्वेत पुद्‌गलो का प्रवाह जब भी वासक्षेप में मिलकर गणधरो के मस्तक पर स्पर्शता है, तभी वे अज्ञानी गणधरो के दिमाग में ज्ञान का विस्फोट होता है। विराट द्वादशांगी रचने की प्रचंड ताकत पैदा होती है।

तीर्थंकरो के शरीर से निकलती यह श्वेतधारा-उर्जा १२५ योजन में सभी के रोगो को मिटा देती है। तीर्थंकरो की यह उर्जा को जो कामी ग्रहण करता है वह निर्विकारी मुनि हो जाता है। वह क्रोधी हो तो क्षमावतार बन जाता है। वह मायावी हो तो वह ऋजुदडवत् सरल हो जाता है। वह लोभी हो तो निःस्पृह शिरोमणी हो जाता है।

यह उर्जा रोगीओं के रोगो को तो दूर करती ही है, परंतु साथ में दोषीओं के दोषो को भी दफना देती है। वैसे तो मैं अभी साक्षात् तीर्थंकर बना नही हूँ, तो भी मेरी उर्जा की ताकत कुछ भी कम नही है। मेरू पर्वत को सिर्फ अंगूठा लगाकर नृत्य करानेवाला मैं ही था। मेरी उर्जा ही थी। जन्म होने के साथ ही चौदह राजलोक में आनंद की लहर फैलानेवाली मेरी उर्जा ही थी। मैं केवल गर्भ में आया तभी देश की सूखी धरती लीली होने लगी थी, घटे हुए धान्य के भंडार १० गुना-२० गुना बढने लगे थे। सुखे हुए तालाब और सरोवरों में जलभंडार पारे की तरह उछलने लगा था। रे ! मानवों के मन में से वैरझेर की भावनाओं का

भी अग्निसंस्कार होने लगा था। दुश्मन राजा मित्र बनकर पिता सिद्धार्थ के शरण में आने लगे थे।

यह है मेरी पवित्र उर्जा की ताकत ! यह उर्जा ही यहाँ कामयाब साबित होगी। यह उर्जा इस सती यशोदा को महासती यशोदा बना देगी। हा जो खुद के पति के आलावा दूसरे किसी के भी तरफ मन से भी रागी नहीं होती, वह **सती!** परंतु जो खुद के पति के प्रति भी रागी नही बनती, पति को वैराग्य अच्छा लगने के कारण से जो खुद भी वैरागिनी बन जाए, वह है **महासती!**

मेरी उर्जा के प्रभाव से मैं उसे ऐसी महासती बना दूँगा ।

वर्धमान भावनाशील बने!!! फिर से एक नजर यशोदा के निर्दोष मुखडे पर डाल दी और खडे होकर यशोदा के पास गए, बाजु में बैठे धीरे से यशोदा के मस्तक-सिर पर खुद का हाथ प्रसारने लगे।

मन में दृढ़ संकल्प 'मेरी पवित्र उर्जा के प्रभाव से यशोदा निर्विकारी बने .....'

ऐसा कोमल स्पर्श होते ही यशोदा की आंखे खुल गई। अचानक खडे हो जाने का मन हो गया। परंतु यदि वह बैठ जाए, तो ऐसा अद्‌भुत स्पर्श मिलना बंध हो जाएगा। इसलिए यशोदा ने उठने के बावजूद सोते होने का ही ढोंग किया। आंखे बन्द कर दी।

परंतु अन्तर में विचारो का परिवर्तन चालु हो गया।

'मैंने यह क्या किया ? शादी के पहली ही रात को स्वामी के साथ कैसा व्यवहार किया? उनके समक्ष मैने कैसे शब्दो का प्रयोग किया? वे मौन रहे, शांति से जवाब देते रहे, स्वामी होने के बावजूद भी सेवक जैसा आचरण करते रहे.... यह क्या मुझे शोभता है ? आर्यदेश की सन्नारी के तौर पर इस तरीके का व्यवहार तो मुझ पर बहुत बडा कलंक है।

मैने इनको स्वार्थी कहा, निर्दयी कहा, निष्ठुर कहा !

नहीं! नही! वह ही वर्धमान अभी मेरे पास बैंठे है, मेरे मस्तक-सिर पर प्रेम का प्रवाह बरसा रहे है। मेरे इस गैराचरण को उन्होंने जाने के लक्ष्य में ही ना लिया हो।

स्वार्थी मैं हूँ के वे है? मैंने मात्र मेरे तुच्छ सुखों का ही विचार किया। उनकी वैराग्य भावना का विचार नहीं किया।

निर्दय मैं हूँ के वे है? मैंने उन्हे बोलते हुए अटका दिया, शब्दो की

अग्निवर्षा बरसाई, तो भी वे कुछ भी बोले नहीं । उनकी लेश भी इच्छा न होने के बावजूद भी मेरी सर्व इच्छाओ को पूर्ण करने का वचन उन्होने मुझे दे दिया।

निष्ठुर वे है कि मैं हूँ ? मैंने उनकी इच्छाओ को मेरे कटुवचनो के प्रहारो से काँट ही दाली।

मर्यादाभंजक वे है कि मैं हूँ? लग्न की प्रथम रात्रि को ही निर्लज्ञ बनकर पति के सामने शरम को माले पे चढाकर बकवास किया।

यह सब कुछ होने के बावजूद अभी वे सब कुछ भूलकर मेरे माथे पर प्रेमपूर्ण हाथ प्रसार रहे है। कैसा निष्कपट स्नेह! कैसा निःस्वार्थ स्नेह!' कैसा निर्दोष स्नेह!

यशोदा ने खुद को धिक्कारा। उसे लगा कि मैने इस महापुरूष का बहुत बडा अपराध किया है। मैं उनकी अर्धांगिनी बनने के लायक ही नही हूँ।

यशोदाने मन में ही एक दृढ निश्चय कर लिया। धीरे से उसने आंखे खोली। वर्धमानने हाथ पीछे ले लिया। यशोदा पलंग पर ही बैठ खडी हुई। 'नाथ! मुझे क्षमा कीजिए। मैंने आपका घोर अपराघ किया है। आर्यनारी का एक ही कर्तव्य है कि पति की इच्छा को पूर्ण करने के लिए सर्वस्व का दान देना। किसी भी प्रकारका भोग दे देना।

नाथ! मेरी आपको सहर्ष अनुमति है कि आप आपको जैसा सुख उपजे वैसा करना। मेरे सुखका अभी लेश मात्र भी विचार नही करना। मैं आपके सुखमें ही सुखी हूँ। आपको प्रसन्न देखकर मेरा हर्ष दुगुणा हो जाएगा। अभी से मैं आपकी दासी, आपकी शिष्या बनकर रहूँगी।

मेरी सिर्फ एक ही बिनती है कि आप जभी दीक्षा ले लेंगे उसके पश्चात् मेरा कौन? मैं किसके सहारे से, किसके प्यार से जीवन बिताउंगी? यदि आपको योग्य लगे तो मुझे केवल एक संतानकी माँ बनाने की कृपा करना। तो भी यदि आपको यह भी कबुल न हो तो भी कोई तकलीफ नहीं है। मैं आपके स्मरण में ही आपके विधवा की जिंदगी जी लूँगी।''

वर्धमान खुद की उर्जा की प्रचंड ताकत साक्षात् देख रहे थे। यशोदा की बात उन्हे १००% वास्तविक लगी। स्नेहपूर्ण स्मित के साथ उन्होंने यशोदा की इस बातको मौन संमति दे दी।

*

२ हे माँ ! मैं ससूराल नही जाऊगी...

"मम्मी! ओ मम्मी! बापुजी कहाँ गए? दो दिन से क्यों दिख नहीं रहे? बोलो ना मम्मी! तू मौन क्यों है? क्यो मेरे साथ कुछ बोल नही रही?" छोटी-सी राजकन्या निर्दोषभाव से पिताको मिलने की तीव्र इच्छा से माताको पूछ रही थी।

वह थी भविष्यमें विश्वपति बननेवाले वर्धमानकुमारकी प्रिय लाडली प्रियदर्शना! हा सचमुच ही वह प्रियदर्शना ही थी। उसके मुख पर राजतेज झलक रहा था। देवाधिदेव परमात्मा महावीर देवकी सुपुत्री, इसलिए उसके रूप के विषयमें तो पूछना भी क्या? परंतु उसमें संसारीयों को अच्छी लगनेवाली कामुकता कहाँ भी नहीं थी। जो इसे देखता उसे उसपर वात्सल्य उभर आता। इसलिए ही उसका प्रियदर्शना नाम एकदम सार्थक था।

हमेशा ही हसती खेलती रहती वह राजकन्या ही माता यशोदा का बरसो से आधार था। लग्न की प्रथम रात्री को ही यशोदा वर्धमान के समक्ष संकल्प कर चुकी थी कि, "मैं आपके मार्ग में कभी भी कंटक स्वरूप नहीं बनूँगी।" इस घटना के पश्चात् तो महिने, बरसो बितते गए। यशोदा देखती थी कि स्वामी उसके साथ बातें करते थे, परंतु उनका मन तो दूसरे ही जगह पर रहता। वर्धमानकी खाने, पीने, चलने, सोने की प्रत्येक क्रिया यशोदा को अलौकिक यंत्रवत् होती हुई लगती। उन क्रियाओंमे चेतन्यका धबकारा दिखाई नहीं देता था। उसने भी मनमें ही निश्चिय कर लिया था कि 'वर्धमान जो करे, वो करने देना। उन्हें कहा भी कोई भी सुचना नहीं करनी।'

प्रियदर्शनाका जन्म हुआ, तभी सारा राजकुल आनंदकी तरंगोमें चडा हुआ था। शय्या पर सोई हुई यशोदाने ताजी ही जन्मी हुई प्रियदर्शना पर हाथ प्रसारते प्रसारते, उसी ही अवसर पर वर्धमान के मुख की ओर दृष्टि की थी, तभी उसे झटका लगा था। वर्धमानके मुख पर हर्ष की कोई रेखा दिखने को न मिली। मात्र गम्भीर मुखमुद्रा, संसारके प्रति अजब-गजबकी निर्लेपता ही वहाँ नजर आई। यशोदा समझ गई के यह लडकी सिर्फ उसकी ही थी, उसके पिताकी नहीं। और सचमुच यशोदाने दोनो की जवाबदारी उठा ली।

परंतु वर्धमान भी प्रियदर्शनाको खिलाते, हाथमें उछालते, उसे खुदके

हाथो से भोजन करवाते। परंतु यशोदाको स्पष्ट नजर आता कि मेरे स्वामी यह सब केवल औचित्य के लिए करते है। उसमें स्नेहराग का अंश भी दिखाई नही देता।

यशोदा को तो यह बात ही समझमें नही आती थी कि 'मुझे रोना चाहिए कि हसना चाहिए?' देवांगना जैसी शक्कर से अधिक मीठे वचनो को उच्चारनेवाली, निर्दोष प्रियदर्शना पर एक सज्ञन पिताको स्नेहकी लकीर भी न फूटे वह उनका कितना प्रचंड वैराग्य ! कामराग को तो चलो अभी भीयह विश्व खराब गिन सकता है, परंतु स्नेहराग, संतान के प्रतिका वात्सल्य तो सभी ही अच्छा गिनते है। संतानो को खिलाना यह तो माता-पिता के लिए धरती पें उतरा हुआ स्वर्ग गिना जाता है। परंतु यह वर्धमान! वे स्नेहरागको भी विष मानते है। कामराग से भी ज्यादा खराब मानते है। कैसा इनका अप्रतिम वैराग्यभाव! स्वामी के इस गुण पर हसना? या फिर स्वामीके विराग पूर्ण व्यवहारकी वजह से खुदके सुखोंको शब बनते हुए देखकर रोना?

परंतु उसके साथ ही यशोदामें रहा हुआ पत्नीत्व और मातृत्व उसे बहुत रोने की प्रेरणा कर रहा था।

यशोदाने माँ से भी ज्यादा स्नेहको बरसाती त्रिशला और प्यारी बेटी प्रियदर्शनाका अपार स्नेहको पाकर खाली मन को भर दिया था। माता त्रिशला! साक्षात देवी! स्त्री सहज माया, ईर्ष्या, निर्दयता आदि कोई भी दोष इनमें नही थे। सगी माता से भी अधिक वात्सल्यको देनेवाली वह सास! नही, नही! यशोदा उन्हे कभी भी सासु मान ही नही सकी थी। पतिका स्नेह नहीं मिलने के बावजूद यशोदाका संसार इन दो पात्रो से हराभरा रहता था।

यशोदा रोज परमेश्वर से प्रार्थना करती थी कि, 'माता त्रिशलाका आयुष्य बहुत लम्बा रहो। मेरा आयुष्य उन्हें मिल जाओ।' कारण? त्रिशला यदि जगत से बिदाय ले ले तो यशोदा पे आभ तुट पडे। क्योंकी बात-बातमें वर्धमान बोले थे, ''यशोदा ! मेरी प्रतिज्ञा है कि माता-पिता जीवंत रहेंगे तब तक संसारत्याग नहीं करना। इसलिए यदि त्रिशला मृत्यु को पाए तो उसके साथ ही वर्धमान भी यशोदाको छोडकर चले जानेवाले थे। एक साथ दो बडे झटके यशोदाको लगनेवाले थे। इसलिए वह आँखोको सार्द्र बनाकर कुदरत से बिनंति करती थी कि 'माता त्रिशला को दीर्घायु रखना।'

परंतु कुदरत ऐसे ही मान जाए? विश्वके करोडो जीव कुदरतको कह रहे थे कि 'वर्धमानको जल्दी संसारमें से बाहर निकालकर, उसे साधना कराओ!

कुदरत! वह केवलज्ञान पाकर धर्म देशना दे तो ही हम करोडों जीव सच्चे सुखी बन सकेंगे।'

कुदरत क्या सिर्फ एक यशोदा की बिनंती को स्वीकारे? या विश्वके करोडो जीवोंकी?

और अंततः एक दर्दमय दिन आ पहुँचा। माता त्रिशला और सिद्धार्थ राजा इस मोहमयी दुनिया को छोडकर हमेशा के लिए चले गऐ। समग्र क्षत्रियकुंड आक्रंद करने लगा। नगर की उंची इमारते, वृक्ष, कुएं भी जाने कि शोक न करते हो वैसे शोक की ध्वनि से व्याप चुके थे।

संपूर्ण क्षत्रियकुंड में सिर्फ दो व्यक्तिओं की आँखें गिली नहीं हुई थी। एक थे वर्धमान और दूसरी यशोदा! लग्नकी प्रथम रात्री को ही यशोदा ने भविष्यमें होनेवाली आपतिओं का विचार कर रखा था। उसे सहन करने के लिए बरसो से सहनशक्ति भी इकट्ठी कर रखी थी। इसलिए ही आँखे तो रोने के लिए तत्पर होने के बावजूद भी यशोदा ने उन्हे रोक रखा था।

यशोदा ने जाने की नेत्रों को सीख दे दी के, 'अभी रोना नही, अभी तो स्वामी के वियोग का बहुत बडा आघात लगना है। तभी तुम मन भरकर बरसना।'

परंतु दो दिनों के बाद समाचार मिले कि 'वर्धमानके बडे भाई नंदीवर्धनके आग्रह से और दो वर्ष संसार में रहना स्वीकारा है। परंतु वह संसारी साधु बनकर जीएगे। क्षत्रियकुण्ड या राजकुल केवल मुख के दर्शन के अलावा और कुछ पा नहीं सकेंगे।'

वर्धमान ने अभी यशोदा के भवन में भी आना बन्द कर दिया था। अंतिम बार मिलने आने जितनी भी सुहृदता वर्धमान ने प्रदर्शित नहीं की। यशोदा ने खुद के हृदय को कठोर कर सब कुछ पचा लिया।

हे धरती! तू फोगट गर्व नहीं करना कि तू विश्व में सबसे ज्यादा सहन करनेवाली स्त्री है। अरे ! अरे ! यह यशोदा के सामने तो तेरी सहनशक्ति की कोई किंमत नहीं है। तू तो बहुत बार ध्रुज उठी है। परन्तु यशोदा तो शिकायत भी नही करती या खुदके दुःखको हलका करने के लिए रोती भी नही।

अभी तो माता त्रिशला भी नही थी। समग्र राजमहल सुमसाम हो गया था। रात्रि के समय में यशोदा एक झरूखे में आकाश की ओर नेत्र को स्थिर कर खडी थी। 'कैसी थी वह लग्न की प्रथम रात! कैसा था वर्धमानकुमार का निर्दोष वात्सल्य को बरसाता हाथ। कैसा माता त्रिशला का अजोड वात्सल्य!

यशोदा अतीतमें गुम होकर खुद की वर्धमान के साथ बिताई हुई पलो को याद कर रही थी। संपूर्ण क्षत्रियकुंडमें नीरव शांति छाई हुई थी। चंद्र की चांदनी राजमहलके झरोखो को सुशोभित कर रही थी। चंद्रको भी जाने मन हो गया हो कि, 'विश्वकी सर्वोत्तम संसारी नारी के दर्शन करूं' । इस तरह चांद चांदनी के द्वारा यशोदा को अनिमेष नयनो से निहार रहा था।

''माँ! बोल तो सही? मैं अभी तुझे भी अप्रिय होने लगी हूँ क्या? कि दो-तीन दिन से मेरे साथ भी तू बोलती नहीं। बापुजी तो कौन जाने? कहाँ गए, परंतु....'' प्रियदर्शना यशोदा का पल्लु खिंच रही थी तभी ही यशोदाको ख्याल आया कि माता और स्वामी के विरह में वह लडकी के ओर का औचित्य भी भूल गई थी। 'बिचारी प्यारी प्रियदर्शना का इसमें क्या दोष?' तुरंत ही यशोदा नीचे बैठ गई, प्रियदर्शना को गोदमें बिठाकर प्यार से उसके मस्तक पर हाथ प्रसारने लगी।

यशोदा : ''बेटी! तू तो हमारे दुश्मन को भी अप्रिय नही होती, तो तेरी अम्मा को तो कैसे अप्रिय होगी? यह तो दो दिन पहले ही तेरे दादा-दादीको भगवानने हमेशा के लिए उनके पास बुला लिया। इसलिए उनके विचारो में ही दो दिन से चिंतीत थी। इसलिए मैं तेरा ध्यान रख नहीं पाई। प्रिया! मुझे माफ करना।''

प्रिया : ''तो भी माँ! परंतु यह तो कहे कि बापुजी कहां गए? क्या उन्हे भी भगवानने उनके पास बुला लिया....''

त्वरीत ही प्रियदर्शना के मुख पर हाथ दबाकर यशोदा बोली, ''नहि, नही प्रिया! वे यहाँ क्षत्रियकुंडमें ही है।

प्रिया : ''तो फिर वे तेरे पास क्यों नही आते? मुझे मिलने क्यों नही आते? उन्हे तो मुझ पर बहुत स्नेह है? तो क्या वे मुझे भी भूल गए?''

बिचारी प्रियदर्शना! पिता वर्धमानके औचित्यसेवनको वह अपार स्नेह समझ बैठी थी। क्या करे? छोटी थी ना?

यशोदा : ''प्रिया! अभी वे हमे मिलने कभी भी नहीं आएगे। कभी भी नही आएगे !'' बोलते बोलते यशोदा का हृदय भारी हो गया। वाणी गद्‌गद्‌ बन गई। आंखो में अश्रु का जल तरने लगा।

प्रियदर्शना माता को रोते हुए देखती रही। इस तरह माताको रोते हुए उसने पहली बार देखा था। उसे भी माँ के प्रति अतिशय लगाव था ही। परंतु कोई

कारणानुसार आज उसके मनमें अलग ही विचारधारा चली। इसलिए ही माँ के रूदन के साथ रोने के बदले आघातजनक शब्दों का उच्चारण वह कर बैठी। 'माँ!' एक बात पूछु? तू मेरे से कुछ भी छुपाएगी नही ना? क्या तुने कोई गंभीर भूल की है? बापुजी को अच्छा न लगे वैसा कुछ किया है? उसके अलावा मेरे बापुजी हमको छोडकर क्यों चले जाएँ? मैं उन्हे जानती हूँ। छोटी छोटी सी भूलोमें तो वे कभी भी गुस्सा होते ही नही। तो फिर वे हमें छोड देने का निर्णय क्यों करे? नक्की तुने ही उन्हे दुःखी किया होगा।''

यशोदा के माथे पर बिजली-सी गिर गई। उसे खुदकी पुण्यहीनता स्पष्ट दिखने लगी। बरसो से जिस लडकी के लिए उसने बहुत भोग दिया, दिन रात मम्मी और पापा दोनो का वात्सल्य बरसाया, उसे कभी भी किसीभी चीज की कमी महसूस होने नहीं दी, वह प्रियदर्शना आज उस पर ही आक्षेप कर रही थी।

और जिस पिताने लडकी के पीछे थोडा भी समय नही दिया था, केवल जगतको दिखाने के लिए लडकी को खिलाया था, आज वह लडकी वैसे पिताका पक्ष ले रही थी।

यशोदा का हृदय कम्प उठा। यदि प्रिया के मन में यह विचार दृढ होगा तो वह मुझे ही धिक्कारने लगेगी। मैं हंमेशा के लिए प्रिया को भी खो दूँगी। ऐसा विचार कर यशोदा ने प्रत्युतर दिया।

यशोदा : ''प्रिया! क्या मैने कभी भी तेरे बापूजी की बात नही मानी हो वैसा तुने देखा है? इतने वर्षो के बाद भी तू तेरी माँ को पहचान नहीं सकी? और प्रिया! शायद मैने कोई बडा अपराध किया हो तो तेरे बापूजी मुझे छोड दे। परंतु प्रिया! तुने तो कोई अपराध नही किया है ना? तो तुझे क्यों नही मिलने आते? तू तो जानती ही है की तेरे बापुजी बहुत ही करूणाशाली है। वे किसीको भी स्वयं दुःख तो दे सकते ही नही, परंतु किसी के दुःखों को देख भी सकते नहीं। राजकुलके कोई दास-दासी को मैं डांट देती तो भी तेरे बापुजी दुःखी हो जाते। वे मुझे कहते कि 'महेरबानी करके भी किसीको कटु वचन बोलना नही। मेरे से वह देखा नहीं जाता।' ऐसे तेरे बापुजी तुझ पर भी करूणा न करे? तुझे भी मिलने नहीं आवे? परंतु कोई दिक्कत नही है प्रिया! मेरा पुण्य ही कम है कि तुझे मेरी गलती दिख रही है। हा! मेरी गलती इसलिए ही क्योंकि मैं एक स्त्री हूँ। उनकी पत्नी हूँ। यदि में उनका छोटा-सा भाई होता तो एक पल भी मैं उनकी परछाई छोडता नहीं।''

प्रियदर्शना वैसे तो ८ वर्षकी बाला ही थी। तो भी उसमें गंभीरता, समझशक्ति इत्यादि गुण खिले हुए थे। माँ की बात उसे बराबर समझ में आ गई। माँ एकदम निर्दोष है यह बात का भी उसे पक्का ख्याल आ गया। माँ को दुःखी करने की वजह से वह भी आसो-भादरवा बरसाने लगी। खुद के छोटे कोमल हाथो से यशोदाके आंसुओं को पोछने लगी।

प्रिया: ''मम्मी! तू मत रो, मेरी भूल हो गई। मुझे विश्वास हो गया है कि तेरी कोई भी भूल नही है। भले बापुजी चले गए। तू तो मेरे पास है ना? मेरे साथ है ना? मुझे बापुजीकी कोई जरूरत नही है। अभी मैं कभी भी बापूजी को याद नही करुंगी।''

कौनसी माता पुत्री के ऐसे शब्दो को सुनकर हर्ष के आसुं न सारे? यशोदा को अत्यंत शांतिका अनुभव हुआ।

यशोदा : ''प्रिया! तेरे बापुजी कभी भी इस संसार में तेरे में या मेरे में रागी थे नही और है भी नही। वे तो विश्वके सभी जीवोको खुदके प्राणो से भी अधिक चाहते है। वे खुदके विश्वव्यापी स्नेह को सिर्फ हम दोनो में ही संकुचित करना नही चाहते।

तेरे पिता अभी विश्वपिता बननेवाले है। इसलिए तुझे उन्हे भूलना ही होगा। मैं भी भूल जाउगी। भूलने का प्रयत्न करूंगी। उस लोकोतर पुरूष को भूलना यह मेरे लिए शक्य ही नही है। प्रिया! विश्व के हित के लिए हम दो लोगो को उतना भोग तो देना ही होगा।

पुत्री! तू तो थोडे बरसोमें शादी करके ससूराल चली जाएगी। तुझे तो बहुत से नए स्वजन-स्नेही मिलेंगे। तुझे तेरे बापुजी के बिना का जीवन कठिन नही पडेगा। सामान्यसे यह नियम है कि 'स्त्री पतिके प्रेमको पाकर पिता के प्रेम को भूल जाती है।' परंतु मेरा क्या? तेरे जाने से तो मेरा एक मात्र सहारा भी चला जाएगा। फिर मेरा कौन? यह राजमहल मेरे लिए स्मशान बन जाएगा। क्षत्रियकुंडमें मेरा कोई शत्रु नही है यह बात तो सच्ची है, परंतु ऐसा कोई मित्र भी कहाँ है कि जिसके समक्ष मैं मेरा हृदय खाली कर सकु? सुख-दुःख की बाते कर सकु?

कोई गम नही है। मेरा अवतार ही सहन करने के लिए हुआ है। चुपचाप सब कुछ सहन करती रहूँगी। तेरे बापूजी का और तेरा स्मरण करते-करते यह भव तो सुख-दुःखसे पसार कर दुंगी।

परन्तु बेटा! ससुराल जाने के बाद दो-तीन बरसो में भी तू मुझे मिलने

आएगी ना? ससुराल के सुखो मे तेरी इस निराधार माँ को भूल नही जाएगी ना?''

मातृवत्सल प्रिया बोल उठी, ''ओ माँ ! तू थोडी भी चिंता मत करना। मैं तुझे छोडकर कहीं पे भी नही जाउगी। हमेशा के लिए तेरे साथ रहूँगी माँ! मैं शादी नहीं करूंगी। यह बात तू समझ के ही रखना कि आज से मैं तेरी लडकी नही, तेरा राजकुमार लडका हूँ। तू निश्चिंत हो जाना। भले बापूजी चले गए। मेरी माँ को रूलानेवाले उस बापूजी की मेरे मन में कोई किंमत नही है। माँ! तुझे मेरी कसम है यदि तू रोई तो।'' यशोदा ने प्रिया को सीने से लगा लिया। जभी वर्धमान दीक्षा लेंगे तभी बरसाने के लिए इकट्ठे किए गए आसुं आज ही धोधमार बनकर बरसने लगे।

यशोदा बोली : ''प्रिया! तू तो पूरी पागल है। क्या कभी भी लडकी हमेशा, माँ के पास रहती है? उसे तो पीयर को छोडकर ससुराल ही जाना होता है। तू मेरी चिंता मत करना। यह तेरे शब्द ही मुझे जीवनभर आश्वासन देनेवाले बने रहेंगे। जभी तुझे याद करुंगी तभी तेरे साथ मीठे-मधुरे शब्द भी मेरे स्मृतिपट पर आएंगे।''

प्रियदर्शना : ''माँ! भले मैं तेरे पास हमेशा के लिए नही रह पाउ, परंतु मैं शादी तो नहीं ही करूंगी। माँ! तुने भी मेरे पिताजी के साथ शादी की और आज वे तुझे निराधार छोडकर चले जानेवाले है। यहां होने के बावजूद भी तुझे मिलने नहीं आते। यह तेरे आँसु, तेरे मुख पर रही हुई उदासीनता देखकर मेरा मन द्रवित हो जाता है। माँ! मुझे भी मेरे बापूजी जैसा ही पति मिला तो? बापूजी ने तुझे तरछोडा, वैसे मेरा स्वामी भी मुझे छोड देगा तो ? तु ऐसा इच्छती है कि मैं भी तेरे जैसे बहुत रोऊ? बहुत दुःखी बनु? निराधार हो जाउ? यदि ना ? तो माँ! मुझे कोई राजकुमार से शादी मत करवाना।

उसके अलावा माँ! तुझे एक बहुत अच्छा उपाय बताती हूँ। बापुजी तो चौबीस वे तीर्थंकर बनने वाले है ना? मैने यह बात बराबर सुनी है। और वे साधु-साध्वी-श्रावक-श्राविका इस तरह के चतुर्विध संघ की स्थापना करेंगे। यह सभी बाते मैने दादीजी के पास सुनी थी। उन्होने मुझे जिनशासन की बहुत सी बाते समझाई थी। दादी भी भगवान पार्श्वनाथके श्राविका ही थे ना? तो माँ जभी बापूजी चतुर्विध संघ की स्थापना करेंगे तभी मैं बापुजी के पास जाकर कहूँगी के ''बापूजी! मुझे भी ओघा दीजिए, मुझे साध्वी बनाइए। मैं आपकी

सेवा करूंगी। आपके साथ ही रहूँगी। माँ तू भी मेरे साथ आना। हम दोनों बापूजी के हाथो से ओघा लेकर फिर हम तीनो सारी जिंदगी साथ रहेंगे। बोल माँ, कितना अच्छा उपाय है ना। अभी तो केवल बापूजी की साधना पूरी हो उतनी ही राह देखनी है।''

यशोदा प्रियदर्शनाकी काली काली भाषा पर अत्यानंदित हो गई। 'कैसा प्रचंड पुण्य! पति मिला त्रण जगत का भरथार! लडकी मिली अत्यंत अच्छी बुद्धिमती!' यशोदा विचार करती रही।

यशोदा : ''पगली! क्या दादी ने तुझे यह बात नही कि के तीर्थंकर साध्वी संघ को स्थापते तो है, परंतु साध्वीजीयाँ तीर्थंकरो के साथ कदापि रह नही सकते? वे सिर्फ देशना सुनने के लिए ही आ सकते है। बाकी उन्हे तो अलग ही रहना पडता। हम साध्वी बने या संसार में रहे, उससे किसी भी तरह का फर्क तेरे बापुजी के साथ के संबंध में होनेवाला नहीं है।

प्रियदर्शना : ''परंतु माँ ! बापूजी वीतराग बन जाए फिर तो भले न हम उनके साथ रहे। उसमें क्या दिक्कत है?''

यशोदा : ''नही प्रिया! तीर्थंकर को भी आचार तो पालना ही पडता है। यह बात तुझे समझमे नही आएगी। तू बडी हो जाएगी फिर खुद से ही तुझे सबकुछ पता चल जाएगा। चल ! अभी बहुत देर हो गई है। तू सो जा।''

यशोदाने प्रियदर्शना को शयनखण्ड की शय्या पर सुला दिया। बाजु में ही वह खुद भी बैठकर प्रियदर्शनाके मस्तक पर हाथ फिराने लगी। उसे शादी की पहली रात याद आ गई। 'वर्धमान जल्दी सुबह को मेरे मस्तक पर इस ही तरीके से स्नेहपूर्ण हाथ प्रसार रहे थे। आज मैं प्रिया पर हाथ फिरा रही हूं। दोनों मे कुछ भी अंतर नही है। दोनो में निर्दोष स्नेह बह रहा है।''

यशोदाके आंखो मे फिर से अश्रु तर आए। प्रियदर्शना माँ के मुख के सामने देखती ही रही। दीपकके प्रकाशमें मोतीकी तरह शोभते हुए वे अश्रुबिंदु प्रियदर्शनाको स्पष्ट दिखाई दिए।

प्रियदर्शना : माँ! बापूजी की याद आ रही है ना? इसलिए ही वापस रोने लगी ना? मुझे भी बापूजी बहुत याद आ रहे है। वे मुझे कितना खिलाते थे। मुझे बगीचे में फिरने ले जाते। उनके हाथों से मुझे खाना खिलाते थे। जभी उनके गोदमें बैठने मिलता तब माँ! मुझे ऐसा लगता कि जैसे मैं राजसिंहासन पर मखमलकी गादी पर बैठी हूँ। उनकी गोद में मुझे गहरी निंद आ जाती। माँ! मुझे

गोदमें सोई हुई देखकर बापूजी मुझे मखमलकी गादी पर सुलाने का प्रयत्न करते तभी ही मैं जग जाती और जानबूझ कर रोने लगती। बापूजी मुझे फिरसे उनकी गोदीमें ले लेते। मैं तुरंत शांत हो कर मरक मरक हंसने लगती।

माँ! तुझे पता है कि कितनी बार बापूजी कंटालकर तुझे कहते कि, ''यशोदा! इस प्रिया को संभाल। मुझे दूसरे थोडे काम बाकी है।''

तु तो बापूजीकी आज्ञा के पालनमें हरेक पल तैयार रहती, परंतु माँ! सच कहूँ? बुरा मत लगाना। मुझे तेरे से भी बापुजी के पास ज्यादा अच्छा महसूस होता। जैसे ही तू मुझे उनकी गोदमें से लेती कि तुरंत ही मैं फिरसे रोने लगती। मुझे चाहिए थी केवल बापुजी की गोद! और अंततः बापुजी फिरसे मुझे उनकी गोदमें सुला देते। मैं तत्काल ही शांत हो जाती। तभी तू हसते हसते बापुजी को कहती के ''नाथ! प्रियाको आपके बिना कौन संभालेगा? अभी उसकी वजह से भी आपको संसारमें रूकना पडेगा। माता त्रिशलाको दुःखी नही करने की प्रतिज्ञा से आपको संसारमें रूकना पडा, तो क्या इस प्रियाको रोते हुए छोडकर जाओगे? मैं तो कह दे रही हूं कि प्रियाकी जवाबदारी आपकी है। या तो उसे संभालने के लिए यहाँ रहो, नही तो उसे भी आपके साथ ही बनजंगल में ले जाना। मैं उसे नही संभालूँगी।''

माँ! ऐसा सुनकर बापूजी उदास हो जाते। तुझे यह सब याद है ना? माँ! भले बापूजी हमे मिलने न आवे, परंतु हम उन्हे मिलने नही जा सकते? क्या हम जाएँगे तो वे हमे धिक्कारेंगे? नहीं नहीं? मेरे बापुजी ऐसा कभी नही करते। तो फिर माँ! तू मुझे उनके पास ले जाएगी? मुझे उन्हे मिलना है।''

यशोदा : ''हा प्रिया! कल सुबह ही तुझे उनके पास ले जाऊंगी। परंतु देखना हा! तेरे बापूजी दुःखी हो वैसा कुछ भी बोलना नही। तू बहुत बोल बोल करती है।''

प्रियदर्शना : ''अरे माँ! तू देखना तो जरा ! मैं बापुजी को ऐसी बाते कहूँगी के वे बहुत खुश हो जाएगे। बोल फिर तो कोई परेशानी नही है ना?''

यशोदा : ''वाह ! तू तो बडी पंडिता बन गई हो वैसी बाते कर रही है। बस अभी बोलना नही। जल्दी सो जा। सुबह तेरे बापूजी को मिलने जाना है ना ? ''

*

३ वैरागी वर्धमान

वह थी मार्गशीर्ष शुकला तेरस की रात्रि। ऐसे भी क्षत्रियकुंड हिमालय के पास होने से ठंडी बहुत पडती थी। यशोदाने सोते समय ही प्रियदर्शना को रत्नकम्बल ओढा दिया था। राजकुलो में सामान्य से सवा लाख रूपये की किंमत की वजन में हलकी, ठंडी गरमी दोनो को रोकने के स्वभाववाली रत्नकम्बलो का उपयोग होता था। यशोदा भी यही रत्नकंबल को ओढ कर प्रियदर्शना के बाजु में ही सो गई थी। रात्रि जैसे जैसे गहरी होती गई वैसे वैसे ही ठंडी भी बढती गई। भूल से यशोदा का हाथ रत्नकम्बल से बाहर निकल गया। और पश्चिमदिशा के विशाल झरोखों मे से आते पवन से यशोदा का हाथ सुन्न हो गया। अचानक उसकी निंद उड गयी। वह लगभग साडे चार बजे का प्रातःकाल का समय था। यशोदा ने फिर से सोने का प्रयत्न किया, परंतु अभी निंद्रा शत्रुणी बनी।

यशोदा को झरोखे मे खडे रहकर खुल्ले आकाश की ओर देखते रहना बहुत रूचता। कुदरत के इस अप्रतिम सौंदर्य को बहुत बार यशोदा निहारती। यशोदा शय्या पर से खडी हुई। संपूर्ण शरीर पर ठीक तरीके से रत्नकम्बल को ढककर यशोदा धीरे धीरे झरोखों में पहुँची। जभी वह आकाशके तरफ देखने जा रही थी, तभी उसके पहले उसकी नजर राजमहल के बगल में रहे उद्यान में में पडी। और यशोदा के साडे तीन करोड रूंवाटे ध्रुज उठे। वह स्तब्ध हो गई। ''यह क्या?'' उसे खुद की जात पर धिक्कार वछुता। उसे लगा कि वह स्वतः ही सतीत्व गुमा रही है।

क्या था वह ?

उद्यान के एक पेड के नीचे वर्धमानकुमार कायोत्सर्ग मुद्रामें नेत्रो को नीचे ढालकर खडे थे। चंद्र का स्वच्छ, शीतल प्रकाश उनके संपूर्ण देह को चांदी से स्नान करवा रहा था। यशोदा को पल-दो पल में ही, ख्याल आ गया कि वह कुमार वर्धमान ही थे।

यशोदा विचारों के तरंग में डुब गई। 'स्वामी ने देह पर पतले सुतराउ कपडे ही धारण किए है। क्या उन्हें ठंडी नही लगती होगी? साधना करने के लिए इतना सब सहन करना पड़ता है? संपूर्ण शरीर पर मैं तो रत्नकंबल ओढ़ कर खड़ी हूँ, और मेरे प्राणनाथ अती भयंकर ठंडी में भी प्रसन्न चित्त से थोडे पतले वस्त्र पहनकर खड़े है। क्या यह मुझे शोभता है।'

यशोदा ने त्वरीत ही शरीर पर ओढी हुई कंबल दूर कर दी। तभी उसे अहसास हुआ कि ठंडी असह्य थी। परंतु उसका लक्ष्य अभी इस तरफ था ही

नही। अचानक उसे विचार आया ! प्रिया को लेकर आज स्वामी को मिलने जाना है। परंतु प्रिया को इस रीत से उसके बापुजी के दर्शन कभी भी नही हुए होंगे।'

वह त्वरीत ही अंदर गई। शय्या में सोई हुई प्रिया को उठाया, ''प्रिया! जल्दी उठ ! एक अद्‌भुत दृश्य बताती हूँ''। माता के वचनो को सुनकर प्रिया तुरन्त बैठ गई। उसके शरीर पर बराबर रत्नकंबल ओढ़ कर यशोदा उसे झरूखों में ले गई।

''देख प्रिया! बगीचे के उस पेड़ के नीचे देख, कौन खड़ा है ? जरा ध्यान से देख।''

प्रिया : ''माँ! यह तो बापूजी है । इतनी जल्दी सुबह में ऐसी कातील ठंडी में वे क्यों वहाँ खडे है? माँ ! बापुजी को ठंडी लगती होगी। तू जल्दी जा उनको रत्नकंबल ओढ़ा कर आ।''

यशोदा ने दर्द भरा स्मित किया।

यशोदा : ''प्रिया! क्या तेरे बापूजी के पास रत्नकंबल नहीं है? उन्हें ओढना ही होता तो कौन उनको रोकनेवाला है?''

प्रिया : ''परंतु, माँ! बापूजी ऐसा क्यों करते है? इस तरीके से असह्य ठंडीमें खुले आकाश के नीचे खडे रहने का क्या प्रयोजन है?''

यशोदा : ''यह बात तो आज तक मुझे भी समझ में आई नही है। परंतु प्रिया! आज सब कुछ समझ में आ गया। देख प्रिया! मेरी और देख। मैंने भी रत्नकंबल ओढा नहीं है। तो भी मुझे ठंडी लग नही रही है। उसका कारण जानती है? तेरे बापुजी को मैने इस तरीके से देखा। इसलिए मुझे विचार आया के स्वामी यदि इस तरीके से रत्नकंबल के बिना कातील ठंडी को सहन करे, तो मुझसे कैसे कंबल ओढा जा सकता है ? और मैंने उसे दूर कर दिया।

प्रिया! यदि मात्र स्वामी प्रति के अनुराग ने मुझमें यह असह्य ठंडी को सहन करने की शक्ति उत्पन्न कर दी, तो तेरे बापुजी तो चौद राज के प्रत्येक जीवो पर मेरे इस अनुराग से अनंतगुण ज्यादा अनुराग धारण करते है। उनमें इस सहनशक्ति का वास हो तो उसमें क्या आश्चर्य की बात है?

प्रिया! तेरे बापुजी अभी विश्व के करोडो निराधार मानवो को निहार रहे है। जिन मनुष्यों के पास घर ही नही है, पहनने के लिए वस्त्र ही नही है, उनके पास ओढने के लिए कामली तो कहाँ से होगी? विश्व के कोई कोने में संकोचकर पडे हुए इन करोडो मानवो को देखने के बाद यह विश्वमाता तेरे बापुजी कैसे रत्नकंबल ओढे?

तीन दिनों से पेट में अनाज का एक कण भी पहुँचा नही है, ऐसे कितने ही गरीब भूख के कारण सो पाए नही होंगे। प्रिया! तू तो मेरी एकमात्र प्यारी पुत्री

है। तुझे निंद न आए तब तक मैं सो सकती नही हूँ। तो तो यह सभी जीव तेरे बापुजी के लिए तो प्यारे संतान है। वे निंद नहीं ले सकते, तो तेरे बापूजी कैसे मखमल की गादी में रत्नकंबल को ओढकर निंद्रा का सुख मान सके?

प्रिया! जो बात मुझे बरसो से समझ में नहीं आती थी, वह बात आज समझ में आ गई। मुझे सतत विचार आते कि ये संसार के खाने, पीने, फिरने के सुख कितने सोहावने है? मैं तो इन सुखों के पीछे पागल हूँ, परंतु स्वामी को क्यों इनमें कोई रूचि नही होती? वे क्यों अत्युदास ही रहते है?

परंतु प्रिया! अभी मुझे समझ में आया कि जभी तुझे हल्का बुखार आता, जभी तुझे सिरदर्द होता, जभी तुझे पेट में दर्द होता, और इन दुःखों से तुझे पीडा होती, तभी मैं आधी-आधी हो जाती। मुझे खाने में रूचि नही होती, संसार के तमाम सुखो पर से मेरा राग तुट जाता। कारण? कारण के तू मुझे बहुत ही प्रिय है और इसलिए तेरे दुःखो में मैं कभी-भी सुख का अनुभव कर नही पाई हूँ।

प्रिया! तेरे बापुजी को तो विश्व के हरेक जीव बहुत-बहुत प्रिय है। इसमें अनंतानंत जीव अनंत काल सें निगोद की भयानक दुनिया में कातील वेदना अनुभव रहे है। अब जो अनंत जीव नरक की दुनिया में अवर्णनीय त्रास का अनुभव कर रहे है। विश्वके लगभग प्रत्येक जीव कोईना कोई दुःखसे पीडित है। प्रिया! यह देखकर तेरे बापुजी को मिष्टान के भोजन न भाए उसमें कोई आश्चर्य नही है। तुझे नरक के जीवो के मुकाबले यदि एक लाख भाग की वेदना से भी मै त्रसित देखु तो प्रिया! मैं जी भी नही सकुंगी। तो तेरे बापुजी तो खुदके करोडो प्रिय संतानोको अभी चिल्लाते हुए, खुन और मांसकी नदीयों में लोटते हुए भडभड भडकती आगमें जलते जलते 'त्राहि माम्' का पुकार करते हुए, साक्षात देख रहे है। तो भी वे जी रहे है, यही ही बडा आश्चर्य है।

प्रिया! तुझे अभी समझमें आया ना? कि क्यों तेरे बापुजी हम दोनो को छोड रहे है। बस, इतना समझाने के लिए ही मैने तुझे उठाया था। प्रिया! 'अभी तू सो जा।''

परन्तु अभी वह देवबाला कैसे सोंए? १ घंटे तक दोनों माँ-बेटी वहाँ ही वर्धमान को देखते बैठे रहे।

आकाश में प्रकाश विस्तरता गया। अंततः दोनों ही वहाँ से खड़े हुए। वर्धमानको मिलने के लिए जल्दी तैयार होना था ना?

प्रात:काल आवश्यक कार्य पूर्ण होने के पश्चात् यशोदाने आर्यनारीको शोभे वैसे हंसकी पंखुडी के जैसे श्वेतवस्त्रोको धारण किए। प्रियदर्शनाको भी देवबाला लगे वैसे तैयार की।

राजमहल के नजदीक में ही कुमार वर्धमान एक अलायदे भवन में रूके हुए थे। दो वर्ष संसार में रहकर भी संपूर्णतः मुनि जैसा ही जीवन जीनेवाले थे। इसलिए ही यशोदा प्रियदर्शना को लेकर वर्धमान को मिलने चली तो सही, परंतु मन में शंका का कीडा खदबदने लगा।

मुनि तो स्त्रीके सामने आंखे भी उंची नही करते, तो क्या वर्धमान मुझे नही देखेंगे?

मुनि तो स्त्रीयों को स्पर्शते भी नहीं है, तो क्या स्वामी मुझे तो ठीक, परंतु प्रिया को स्नेह से मस्तक पर हाथ रखकर आशीर्वाद भी नहीं देंगे? मैं तो उनका कोई भी प्रकार का वर्तन सहन कर लूंगी। परंतु प्रिया तो बिचारी छोटी है। यदि स्वामी बेहुदा वर्तन करेंगे, तो प्रिया कैसे सहन करेंगी?

माँ-बेटी दोनों ही ने वर्धमान के भवन में प्रवेश किया, दोनों ने देखा कि थोड़ी दूर खुले आकाश के नीचे वर्धमान पद्मासन मुद्रा में ध्यानस्थ बैठे है । अहो हा ! क्या उनके मुख मण्डल पर प्रसन्नता ? संसारी न समझ सके कल्पना न कर सके, ऐसा आत्मिक आनन्द वर्धमान के आत्मप्रदेशों में हिलोड़े ले रहा है ।

''बापूजी ! बा.... पू..... जी!'' बोलते हुए प्रियदर्शना यशोदा का हाथ छोड़कर वर्धमान की ओर भागी। उस मधुर आवाज ने वर्धमान के ध्यान को भंग (!) किया। वर्धमान ने आँखे खोली ! सामने ही देवबाला जैसी लगती प्रियदर्शना को निरखा। प्रियदर्शना वर्धमान के सामने आकर एक पल रूक गई। पिताजी को उसने ऐसे कभी देखा नही था। इसलिए क्या करना? इसके आसमंजस्य में वह स्थित रही।

परन्तु यह तो थे वर्धमानकुमार ! विश्व के सर्वजीवो की वात्सल्यमयी माता! मुस्कान सहित वर्धमान ने दो हाथ बढाए। ''आ जा प्रिया! क्यों अटक गई?'' और प्रिया दुगुणी तेजी से दौडकर वर्धमान को गले लग गई। मात्र दो चार दिनो का ही बीच में विरहकाल पसार हुआ था। परंतु जाने की बरसो के बाद पिता-पुत्री का मिलन होता हो वैसा दृश्य खडा हुआ था। वर्धमान प्रिया के मस्तक पर हाथ प्रसारते हुए बोले, ''प्रिया! आनंद में तो है ना। मेरे बिना अच्छा नहीं लगा? तेरी माँ ने तुझे संभाला नही?''

यशोदा इस देवदुर्लभ दृश्य को देखकर हर्ष के आंसू सारने लगी। उसकी कल्पना गलत हो गई। वर्धमान ने उन्हें आवकारा था। धीमे पगलो से यशोदा भी पास में गई। स्वामीके चरणो को स्पर्श करके पैर के पास ही बैठ गई।

यशोदा : ''प्रिया को आपको मिलने की बहुत उत्कंठा थी, इसलिए आपके पास लाई हूँ। बाकी आपकी साधना में, मैं खलल पहुँचाती नहीं।''

वर्धमान : ''यशोदा! मेरी ही इच्छा थी कि एकबार तू और प्रिया मुझे

मिलने के लिए आजाए । मुझे कई बातें करनी ही थी।''

यशोदा! मेरा मार्ग अभी बदल गया है। माता-पिता का देहांत होने से मेरी प्रतिज्ञा पूरी हो गई है। मैं बडे भाई के आग्रह से अभी दो वर्ष मुनि के जैसे यहां ही जीउगा। परंतु अभी मेरी साधना की भूख अदम्य बनी है। वीतरागता की झंखना रोमरोम में प्रसर चुकी है। कभी महाभिनिष्क्रमण के मार्ग पर डग रखुं? कभी घोर-अतिघोर साधना करके वीतरागता को पाउं? कभी तीर्थ की स्थापना करके करोडो जीवों का इस असार संसार में से तारू? नंदन राजर्षि के भव में जो भावना घुंटी थी उसे सफल करने की तक अब आ चुकी है।

यशोदा! मैनें मेरे तरफ से तेरे प्रति की और प्रिया के प्रति की सभी ही फरज अदा की है। कहाँ भी मेरी ओर से तुझे या प्रिया को दुःख न हो उसकी बहुत सावधानी रखी है। अभी मात्र मेरी एक ही भावना है कि तुम दोनो मुझे संसार त्याग करने की सहर्ष अनुमति दो। भाई नंदीवर्धन की तरह तुम दोनो जिद मत करना।

वर्धमान ने गोद में बैठी प्रियदर्शना से पूछा, ''तू मेरी बात मानेगी । तुझे अब मुझे भूलना है, तेरी माँ के साथ ही तुझे सदा रहना है ।''

प्रियदर्शना : ''बापूजी ! मैं आज आप को यही तो कहने के लिए आई हूँ, कि मैं या माँ आपको नहीं रोकेंगे । काकाश्री भले ही आपको रोके । मैं नहीं रोकूँगी । बापूजी ! मैं आपकी पुत्री हूँ, आपके सुसंस्कार ही मुझ में भरे हुए है। जब आप विश्व के हितार्थ अपने कदम बढ़ा रहे है तो हम फिर आपको क्यों रोकेंगे? क्यो बाधक बनेंगे ?

बापूजी ! सिर्फ आखिरी बार आप से मिलने के लिए आयी हूँ, अब कभी आपकी साधना में दखल नहीं दूँगी। यदि माँ यहाँ आने की जिद करेगी तो भी मैं उसे रोकूंगी । बोलो इससे ज्यादा आपको क्या चाहिये ?

माँ ! मैंने तुझे कहा था, कि मैं बापूजी को खुश खुश कर दूँगी, यह मेरी बात सही है ना ।

परन्तु बापूजी ! एक विनंती हमारी आपको माननी ही पड़ेगी । जब आप साधना करके वीतराग बनोगे, तब तत्काल हमे सन्देश भेजना, हम दोनों आपके पास आकर आपके सन्मुख ही दीक्षा आपके द्वारा लेना चाहेंगे । क्यों माँ सही है ना?''

थोड़ी देर बाद यशोदा ने प्रियदर्शना के साथ विदा ली ।

दो वर्ष देखते-देखते व्यतीत हो गये । बीच-बीच में यशोदा प्रियदर्शना को लेकर दूर से ही स्वामी के दर्शन कर लेती । स्वामी को दखल पैदा न हो, इसलिए दूर से ही दर्शन करके चली जाती ।

*

४ महाभिनिष्क्रमण के पथ पर

मागसर वद १० का सूर्योदय हुआ.... क्षत्रियकुड में जोरदार तैयारियाँ चल रही थी । पिछली रातको कोई प्रजाजन सोए नही थे। कल होनेवाली वर्धमान की दीक्षा के विषय की बाते और तैयारीयोमें कभी सूर्योदय हो गया उसका ख्याल किसी को न आया ।आकाश देव-देविओं से उभराने लगा । विशाल राजमहल में दास-दासियाँ चारों ओर भागंभाग कर रहे थे । आज किसी को भी फ़ुरसद नहीं थी ।

इस अवसर पर राजमहल में दूसरी मंजिल के विशाल शयनखण्डमें यशोदा सुनमुन बनकर बेठी थी। उसके जीवनका सबसे दुःखमय दिन आ चुका था। आज वह सती स्त्री पति होने के बावजूद विधवा बननेवाली थी। आज वह स्त्री संसारी होने के बावजूंद आज भाव से संन्यासिनी बननेवाली थी।

यशोदा गई रातको एक पल के लिए भी सो न सकी । किन्तु शादी की प्रथम रात से ही उसने स्वामी के दीक्षा दिन की कल्पना तो की ही थी । परंतु जभी वह कल्पना हकीकत बनकर नजरो के सामने उपस्थित हुई, तभी यशोदा के लिए वह असह्य बन गई । महान कष्टपूर्वक आवश्यक कार्यो को संपूर्ण कर वह फिर से विशाल शयनखंडमें आकर बैठ गई। दीक्षा का वरघोड़ा निकलने की घडीया नज़दीक आ रही थी । यशोदा आखरी दो वर्षो से वर्धमान से मिली भी नहीं थी । उनके साथ बाते कर नही सकी थी । यशोदा को बहुत इच्छा हुई कि आखरी दिन पर तो स्वामी के साथ अंतिम वार्तालाप करने मिले । परंतु यह कैसे शक्य बने ? नीचे वर्धमान हजारों व्यक्तिओं से घिरे हुए थे । देव - इन्द्र - राजा आदि वर्धमान को आजू बाजूसे घेर कर बैठे है । कैसे मिला जा सके ?

यशोदा खड़ी हुई, बैठने के लिए बने हुए ऊँचे आसन पर बैठी । अभी ही थोड़ी पलो में सामने दिखते हुए राजमार्ग से स्वामी हमेशा के लिए विदाय लेंगे । यशोदा सोचती रही, ‘बाद में क्या? मैं किसके साथ रहूंगी ? मेरा कौन ? प्रिया तो थोड़े वर्षो के बाद शादी करके ससुराल जाएगी। मैं संपूर्णतः निराधार बन जाऊंगी । यह वैभव, यह राजसुख, यह सुख सायबी स्वामी बिना सब शुन्य महसूस होगा । यह महल मेरे लिए खंडेर बन जाएगा। मुझे अकेलीको भोजन भी

कैसे रूचेगा ? दिन के २४ घंटे कैसे पसार करूंगी ? एक एक पल मुझे बरसो जितनी बडी लगेगी ?'

यशोदा खूब ही विहल हो गई । उसकी वेदना तो नारी ही समझ सकती है । यह विश्व तो उसकी कल्पना करने के लिए भी समर्थ नही है।

''यशोदा !'' यशोदा के कर्ण पर यह मधुर टहुँका सुनाई दिया । यशोदा ने राजमार्ग से दृष्टि खींची, तो सामने ही वर्धमानकुमार खडे थे । यशोदा को आश्चर्य हुआ 'अहो हो ! आखरी आखरी पलो में भी मुझे याद किया ? इस अभागिनी को याद करनेवाला है ही कौन?' यशोदा त्वरीत खड़ी हो गई। सड़सड़ाट दौड़कर वर्धमान के चरणों में पेड़ की माफक गिर गई । उसकी आँखो में से चौधार आँसु बरसने लगे । दो - चार मिनिटो तक वर्धमान ने उसे रोने दिया।

''यशोदा ! हजारों लोगों के बीच में से खड़े होकर अंतिम बार तुझे मिलने आया हूँ। तुझे इतना ही कहने आया हूँ कि 'यशोदा ! अभी मैं जा रहा हूँ । मैं तुझे तेरी ईच्छा के अनुसार सुख नहीं दे पाया नही हूँ । तेरी यह महानता है, कि तुने तेरे सभी सुखों का भोग देकर मेरा मार्ग निष्कंटक बना दिया है । मेरी प्रसन्नताको ही तूने सर्वस्व समझ लिया। मेरी वजह से तुझे बहुत दुःख हुआ होगा। उसकी क्षमा चाहता हूँ । मुझे माफ करना ।''

ये अंतिम शब्दो को सुनते ही यशोदा तूट गई । स्वामी की यह कैसी उदारता है, एक मेरे जैसी तुच्छ नारी के पास वे क्षमा यांचे ? यशोदा आक्रंद सहित रोने लगी ।

''यशोदा ! मैं महाभिनिष्क्रमण के मार्ग पर जा रहा हूँ, अति कठिन है यह मार्ग । मेरी विदाय के अवसर पर तू सहर्ष अनुमति दे। आंसुओ को बहाकर अमंगल मत कर । यदि तू सहर्ष अनुमति नही देगी तो मेरे मन में एक रंज रह जाएगा कि एक व्यक्ति मेरी वजह से दुःखी है ।''

यशोदा को ख्याल आ गया कि इस अवसर पर उसकी जिम्मेदारी क्या है ? वह तुरंत खडी हो गई । वस्त्रों से खुद के आँसूओ को पोछकर वह बोलने लगी । ''स्वामिनाथ ! यह तो हर्ष के आँसु है । आपने मुझे अंत-अंत में भी याद किया यह हर्ष हृदय में समा नही पाया इसलिए अश्रु के रुप में उभर गया । आप सुखपूर्वक आपके मार्ग पर प्रयाण किजीए । आप की मंगल कामना पूर्ण हो उसकी में राह देखूँगी । स्वामिन् ! आप मुझे स्वल्प भी याद मत करना । आपकी साधना

में मेरा स्मरण, मेरा विचार आप कदापि मत करना । आपको तो विश्व के सर्वजीवो के तारणहार बनना है । मेरे जैसी सामान्य स्त्री के लिए आप आपका एक भी समय बिगाडना मत । और हा! प्रिया की चिंता भी मत करना । मैं कभी भी उसे दु:खी होने नही दूँगी । आपके अवकाश को पूरा करना तो मेरे लिए अशक्य है, तो भी आपको याद करकर दु:खी हो जाए वैसी पलो को मैं कभी नही आने दूँगी, यह मेरा आपको वचन है ।

ओ नाथ ! मैं जानती हूँ कि आपको ऐसी कोई चिंता नही है । तो भी मैं मेरा हृदय खाली कर रही हूँ । इच्छा तो थी कि ''मैं भी आपके साथ जंगलो में चली आऊँ'' परंतु मेरा अस्तित्व आपकी साधना में खलेल पहुँचाने वाला बनेगा। और ऐसे भी मैं आपके जितनी सत्वशालिनी नही हूँ ।

''माँ''..... शयनखंण्ड के द्वार पर प्रियदर्शना आकर खड़ी थी । यशोदा की नजर उसकी ओर गई । ''प्रिया ! यहाँ आ !'' प्रियदर्शना दौड़ते दौडते यशोदा के पास आ पहुंची। ''प्रिया ! तेरे बापुजी अभी जा रहे है । अभी वे कभी भी वापस आने वाले नही है । उनके पैर पडकर आशीर्वाद माँग ले कि वो जभी तीर्थंकर बनकर तीर्थ की स्थापना करेंगे, तभी तुझे और तेरी माँ को जल्दी बुला ले।'' बोलते-बोलते यशोदा फिर से श्रावण-भादरवा बरसाने लगी ।

छोटी सी प्रियदर्शना बहुत समजु और गंभीर थी ।

''बापुजी ! आप मेरी चिन्ता मत करना, मैं माँ के साथ अच्छी तरह से रहूँगी । आपके बिना मैं नहीं रोऊँगी । मां रोएगी तो भी अटकाउंगी। जाओ बापुजी! नीचे हजारो लोग आपकी राह देख रहे है । मात्र मुझे आशिष देना कि मैं भी आपके मार्ग पर आ सकू ।''

और महावैरागी वर्धमान ने प्रियदर्शना और यशोदा के सिर पर हाथ रखकर विदाय ली । स्वामी के वरघोडे को निहारने के लिए यशोदा प्रिया को लेकर विशाल झरोखें में पहुँची। राजमार्ग की ओर दृष्टि रखकर खड़ी रही । थोड़ी ही देर में वहाँ से वर्धमान की शिबिका पसार होते हुए दिखाई दी । अहो ! देवलोक के अधिपति इन्द्रों आज अदकेरे सेवक बनकर वह शिबिका (पालखी) उठाने का काम कर रहे थे । संपूर्ण राजमार्ग हजारों लोगों से भरचक हो गया । पैरो की ऐडी पर उंचे हो-होकर हजारो लोग वर्धमान के मुखारविंद को निहारने की कोशिश कर रहे थे । अनेक स्त्रीयाँ घरो की छत, ओटले पर पहुंचकर वर्धमान को देख रही थी । स्वामी के इस ऐश्वर्य को देखकर यशोदा गदगद हो गई ।

शिबिका आगे बढने लगी । यशोदा को लगा कि यह स्वामी नही जा रहे, परंतु यमराज यशोदा के प्राण को खिंचकर ले जा रहा है । जब तक शिबिका दिखाई दी तब तक यशोदा देखती ही रही । और जैसे शिबिका अदृश्य बनी कि यशोदा कि हिम्मत तूटी और वह गिर पडी । बेहोश होकर धरती पर ढल पडी ।

प्रियदर्शना तत्काल बाहर दौड़कर आयी। जोर-शोर से चिल्लाकर दासदासियों को बुला कर लायी । ठण्डे जल के छींटे देकर यशोदा को होश में लाने की कोशिश होने लगी। धीरे-धीरे यशोदा होश में आई। यशोदा को दीक्षा कार्यक्रम-महोत्सव दिखाने के लिए एक रथ आकर खड़ा हो गया । यशोदा शक्ति हीन हो गई, बड़ी मुश्किल से यशोदा प्रियदर्शना के साथ रथ में बैठी । तीव्रगति से रथ राजमार्ग पर दीक्षा स्थल की तरफ बढ़ने लगा । नगर के बाहर पहुँचते ही देखा कि हजारों लोगों की भीड़ खड़ी थी । वर्धमान के केशलुंचन करने का समय शेष था । यशोदा को लगा कि भीड़ को चीरती हुई आगे बढ़कर पतिदेव के अन्तिम बार चरण स्पर्श कर लू । यह आखिरी मौका था । वर्धमान अणगार मुनि बनने के बाद फिर अनन्तकाल के लिए हमेशा के लिए चरणस्पर्श का अवसर वापस मिलनेवाला नहीं है । यह बात यशोदा अच्छी तरह जानती थी । परन्तु हजारों की जनमेदनी के बीच में से निकल कर वर्धमान तक पहुँचने की चेष्टा वह न कर सकी ।

बाजु में ही थोडे उंचे पर्वत जैसे भाग पर यशोदा चढ गई । प्रियदर्शना साथ में ही थी। वहाँ से वर्धमान का सूर्य के जैसे चमकता अतिप्रसन्न मुखारविंद स्पष्ट दिख रहा था। यशोदा हर्ष से पगला-सी गई। अंत-अंत में स्पर्श नही, तो भी स्पष्ट दर्शन तो मिले। ''माँ! मुझे भी बापुजी को देखना है।'' राजबाला बोल उठी। यशोदा ने उसे उठा लिया। हाथ को लम्बा करकर अंगुली चिंधते हुए बोली, ''प्रिया! देख, वहाँ रहे तेरे पिताजी। नहीं मात्र तेरे ही पिता नही, अभी तो वे विश्वपिता है।' प्रियदर्शना छोटी-सी आंखो को लम्बाकार वर्धमान को देखती रही।

वर्धमान ने दो-चार पल में ही पंचमुष्टि से मस्तक के बालो को खिंच लिया। यशोदा से यह सहन नही हुआ। वह जोर से चिख उठी।

वर्धमान अभी श्रमणार्य बने। पीछे देखे बिगर वे सिंह की तरह वन-जंगल की दिशा में चलने लगे। यशोदा का हृदय पुकारने लगा। ''ओ नाथ ! एकबार मात्र अंतिमबार मेरी ओर दृष्टि डालो। मुझे स्नेह से देखो। आपका पल मात्र का

स्नेहसभर दृष्टिपात मेरे लिए जीवन भर का उपहार होगा । ओ स्वामी ! मैंने आपके लिए बहुत बड़ा त्याग किया है । आपके आत्मोत्थान के पथ पर मैं कभी बाधक नहीं बनी ।

मैं अपने त्याग के बदले आपसे सिर्फ प्यार भरी निगाह की अपेक्षा कर रही हूँ । स्वामी ! आपको इसमें कोई कष्ट होने वाला नहीं है ।

क्या आपको ऐसा भय लग रहा कि यदि आप मेरी तरफ देख लेंगे तो यहां उपस्थित इन्द्र आपकी मजाक करेंगे । ओ नाथ ! यह भय निकाल दो, इन्द्र तो आपके अनोखे वैराग्यभाव को जानते है । उल्टा वे तो और खुश होंगे कि प्रभु ने आखिर करूणा बहाई ।''

यशोदा उमंग के साथ इन शब्दों के चिन्तन में थी । उसे ऐसा लगा कि अब वर्धमान मेरी तरफ देखने ही वाले है । परन्तु वाह रे नियति, तेरी गति भी बड़ी विचित्र है, वर्धमान तो नैत्रों की निगाह को नीचे कर आत्मकल्याण के पथ पर अगेसर हो रहे थे! यशोदा की अन्त:दिल की पुकार भी वे न सुन सके ।

''ओ ! करूणामय देव ! विश्व पर करूणा करने से पहले अपनी अर्धांगिनी पर तो दया करो । यह घोर निष्ठुरता आपको अपनी साधना में कैसे सफल होने देगी ।'' यशोदा का रोम रोम पुकार रहा था लेकिन अब उसके आर्तनाद को सुने कौन?

यशोदा खुद को रोक नहीं पाई। प्रिया को लेकर महामुश्कील से वह वर्धमान के पीछे भागने लगी। परंतु शरीर में अभी शक्ति नही थी। प्रिया को साथ लेकर वर्धमान को पकडना यशोदा के लिए अशक्य था। १००-२०० चरण जाने के बाद यशोदा अटक गई। धुल में वर्धमान के पवित्र पगले गिरे दिखाई दे रहे थे। 'स्वामी के चरण नहीं, तो भी स्वामी के चरणो से स्पर्शी हुई धूल तो मिली।' यशोदा नीचे बैठ गई। वह धूल को लेकर खुद के दो नेत्रो और ललाट पर लगाई। भारी हृदय से वह राजमहल की ओर वापस लौटी।

।। नमोऽस्तु तस्मै जिनशासनाय ।।

*

स्वाध्यायोपयोगी पुस्तकें

स्वाध्यायोपयोगी पुस्तकें

1. कल्याण मंदिर, 2. रघुवंध (1-2 सर्ग), 3. कीरातार्जुनीच (1-2 सर्ग), 4. शिशुपालवध (1-2 सर्ग), 5. नैषधीचचरितम् (1-2 सर्ग) श्लोक, अर्थ, समास, अन्वय, भावर्थ सहित.

न्याय सिद्धांत मुक्तावलि (भाग 1-2) गुजराती विवेचन सहित.

व्याप्तिसंचक... चन्द्रशेखरीयावृत्ति सहित * सिद्धान्त लक्षण (भाग 1-2) चन्द्रशेखरीयावृत्ति सहित

सामान्यनिरूक्ति (गुजराती विवेचन) * अवच्छेदकत्वनिरूक्ति (गुजराती विवेचन)

आगम ग्रन्थो

ओधनिर्युक्ति (भाग 1-2)	द्रोणाचार्य वृत्ति + गुजराती भाषांतर (प्रताकारे)
ओ.नि. सारोद्धार (भाग 1-2)	विशिष्ट पंक्तिओ उपर विवेचन (प्रताकारे)
दसवैकालिक सूत्र (भाग 1 से 4)	हारिभद्रीवृत्ति + गुजराती भाषांतर
आवश्यक निर्युक्ति	(हारिभद्रीवृत्ति - गुजराती भाषांतर सहित भाग 1 से 8)
उत्तराध्ययन सूत्र	(शांतिसूरिवृत्ति - गुजराती भाषांतर सहित अध्ययन-1)
उपदेशमाला-सिद्धर्षिगणिवृत्ति	(54 गाथा) (गुजराती भाषांतर सहित)

सिद्धान्तरहस्यबिन्दुः (ओधनिर्युक्ति की विशिष्ट पंक्तिओनु रहस्य खोलती नई चन्द्रशेखरीया संस्कृत वृत्ति)

संयम-अध्यात्म-परिणतिपोषक ग्रन्थो

सामाचारी प्रकरण (भाग 1-2)	चन्द्रेशखरीयावृत्ति गुजराती भाषांतर सहित (दशविध सामाचारी)
योगविंशिका	चन्द्रेशखरीयावृत्ति सहित

स्वाध्यायीओ खास पढ़ें

स्वाध्याय मार्गदर्शिका (सिलेबस) * शास्त्राभ्यासनी कला (ग्रन्थों को कैसे पढ़े ? उसकी पद्धति)

मुमुक्षु - नूतन दीक्षित - संयमी के लिए अत्यन्त उपयोगी पुस्तकें

* मुनिजीवन की बालपोथी (भाग 1-2-3) * संविग्न संयमीओने नियमावली

* हवे तो मात्र ने मात्र सर्वविरती

* गुरूमाता * वंदना * शरणागति * महापंथना अझवाला
* विराट जागे छे त्यार * त्रिभुवनप्रकाश महावीर देव
* महाभिनिष्क्रमण * ऊंडा अंधारेथी * विरागनी मस्ती

} ये नौ पुस्तकें को प्रत्येक आत्मार्थीअे को अवश्य पढ़नी जैसी है...

* धन ते मुनिवरा रे... (दस विध श्रमणधर्म पर 108 कडी + विस्तृत विवेचन)
* विश्वनी आध्यात्मिक अजायबी (भाग1-2-3-4)... (450 आसपास श्रेष्ठ प्रसंगो)
* अष्टप्रवचन माता... (आठा माता उपर विस्तृत विवेचन)
* महाव्रतो... (पाँच महाव्रतो उपर विस्तृत विवेचन) * जैनशास्त्रोना चूटेला श्लोको भाग1-2 (अर्थ सहित)
* आत्मसंप्रेक्षण... (आत्माना दोषो केवी रीते जोवा? पकडवा ? अेनु विराट वर्णन)
* मुमुक्षुओने मार्गदर्शन... (दीक्षा लेवामां नडरतभूत बनता अनेक प्रश्नो नु समाधान)
* 350 गाथानु स्तवन (भाग 1-2-3)... (पांच ढाळ उपर विस्तुत विवेचन सहित)
* सुपात्रदान विवेक (श्राविकाओने भेटमां आपवा-साची समज आपवा मंगावी शकशो)
* आत्मकथा (विरतिदूतनी 11 आत्मकथाओनो संग्रह) * दसवैकालिकचूलिकानुं विवेचन
* शल्योद्धारा (आलोचना करवा माटे उपयोगी सूक्ष्तम अतिचार स्थानो नो संग्रह)
* धन धन्नो अणगार रे * संघ मारो भगवान * शासन प्रभावना * यशोदा (गुज.) * यशोदा
* चतुर्विधसंघने मुंझवता प्रश्नो (भाग 1 से 4) * मा ते मा * माँ यानी माँ

उववुह, थीरीकरण, वात्सल्य, धर्म परिक्षा (भाग 1 से 3), आराधक विराधक चतुर्भगी, कूपदृष्टांतविशदीकरण

विरतिदूत मासिक **1 थी 120 अंक नो आखो सेट जेने पण जोइये, ते मेळवी सके छे.**

हिन्दी मे अनुवाद

* किजीए सुपात्रदान, लिजीए फल महान * यशोदा * अहो वीरम्... महावीरम्... * माँ
* साधु-साध्वीजीओ की ऐसी अजोड भक्ति क्या आपने की है? * Miracle of Aura

देवी यशोदा !
वर्धमान कुमार वैरागी होने से तुम्हारा त्याग कर पाए !
परंतु तुमने तो वर्धमान कुमार के प्रति रागी होते हुये भी उनके त्याग को किस तरह स्वीकार कर किया ?
लाख लाख धन्यवाद है तुम्हे और तुम्हारे जीवन को !
अणगार बने वर्धमान कुमार की चरण रज को मस्तक पर चढानेवाली आपके अति पवित्र भावना को हमारा करोडो वन्दन !!!